

# ‘यामा’ का गीति-शिल्प

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को एम० फिल्०

उपाधि के लिए प्रस्तुत

लघु-शोध-प्रबन्ध



निर्देशक

प्रोफेसर मजीर मुहम्मद

एम० ए०, पी०-एच० डी०

डी०-लिट०

अध्यक्ष

प्रस्तुतकर्त्री

श्रीमती सर्वेयकुमारी शर्मा

एम० ए०, बी० एड०

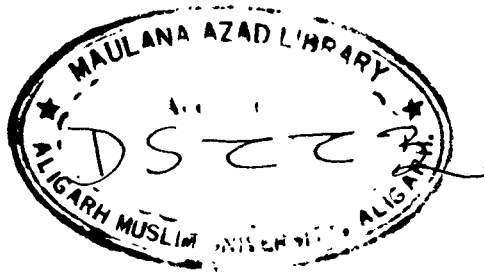
हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

मई, १९८४



DS883



## प्राक्कथन

छायावाद के वसन्त- वन की सबसे मधुर, भाव सुसज्जित मही महादेवी को छायावादी भाव- साधना के युग की प्रेम साधिका नीरा भी कहा जाता है। छायावादी कवियों में महादेवी का विशिष्ट स्थान है। वह इसलिए नहीं कि वह नारी हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने छायावादी काव्य के भाव पक्ष तथा कला पक्ष को विकसित किया है। महादेवी की अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा इस काव्य को सबसे अधिक देन यह है कि कविता उनके कण्ठ से विशुद्ध अनुभूतिभरी होकर फूटी है। हृदय की सूक्ष्मतम एवं गहनतम भावनाओं को जितनी सफलता के साथ महादेवी जी ने व्यक्त किया है, उतनी सफलता के साथ अन्य छायावादी कवि शायद ही कर सकें हों। उनके काव्य में मात्र कला का विकास न होकर हृदय की फकार भी है।

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म १९०७ ई० में होती के दिन उत्तर प्रदेश स्थित फर्रुखाबाद के सम्पन्न परिवार में हुआ था। बापू फिदा ब्रिगेविन्द प्रसाद वर्मा अपने क्षेत्र के सम्मानित एडवोकेट थे। बापू दार्शनिक वृत्ति के तथा नारी स्वातन्त्र्य और प्रगतिशील विचारों के प्रबल समर्थक थे। महादेवी जी की प्रारम्भिक शिक्षा श्रीमती किरानी देवी चिहणी कलाविद होने के साथ साथ भगवान् कृष्ण की उपासिका थीं। माता फिदा के सद्गुणों का प्रभाव उन्हें बाल्यकाल से ही विद्वत्ता तथा वास्तविकता की ओर प्रेरित करता रहा। महादेवी जी ने फिदामह प्राचीन मान्यताओं में वारसा रक्खे थे और उन्हीं की इच्छा के कारण बालिका महादेवी वर्मा का विवाह केवल नौ वर्ष की अवस्था में गोरखपुर के श्री स्वरूपनारायण जी के कर दिया गया। विवाह के समय वर महीन्द्र वर्मा ही थे। विवाह के पश्चात् महादेवी जी की शिक्षा का प्रबन्ध घर में ही दिया गया। उनकी प्रारम्भिक

शिक्षा इन्दौर में हुई थी, छठी कक्षा के पश्चात् वाफो स्वाहाबाद के ग्रीसबोर्ड मर्ल कालेज में अध्ययन किया। अपने अध्ययनकाल में वाफो पब्लिश रजिस्ट्रार बन चुके थे, क्योंकि फिरोजपुर के समान पति-गृह में अध्ययन की अनुमति राज्य सरकार द्वारा नहीं दी गई। छात्रावस्था में वाफो विशेष प्रतिभाशाली थीं। अपनी स्तुति साधना से उन्होंने १९२४ ई० में इण्टर की परीक्षा दी, तत्पश्चात् बी० ए० करने के बाद वाफो संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा पास करके उन्होंने उत्तीर्ण की। एम० ए० की परीक्षा के पश्चात् प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्रभारवाहक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई और तभी से वाफो इस पद पर कार्य करती आ रही हैं।

सोमवार २८ नवम्बर १९८३ ई० को ब्रिटन की प्रधान मंत्री श्रीमती थैचर द्वारा महीयसी महादेवी को ज्ञानपीठ पुरस्कार उनकी कृति 'यामा' पर प्रदत्त किया। श्रीमती थैचर ने महादेवी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व की भूरि भूरि सराहना की। श्रीमती थैचर ने अपने भाषण में कहा, "महादेवी जी ज्ञानवादा की प्रमुख रचनाकारों में हैं जिस काव्यधारा ने आधुनिक भारतीय कविता में १९३० के दशकों में युगान्तकारी परिवर्तन कर दिया। महादेवी साहित्यशास्त्र की प्रणेता हैं। संस्कृत काव्य की कृतावली हैं। भारतीय नारी पर लिखे गये निबन्ध संग्रह की लेखिका हैं जिसे भारतीय कलाशिल्पी की मान्यता प्राप्त है। उन्होंने अपने भाषण में महादेवी जी की कविता की इन पंक्तियों का उल्लेख किया -

“बटोही को ले जाओ मफ़धार  
छूँकर लो जाओगे पार  
विसर्जन ही है कर्णधार  
वही पहुँचा देगा उस पार।”

छात्रावस्था में वाफो की दार्शनिकता, चिन्तन प्रियता तथा विचार स्वातन्त्र्य से प्रभावित महादेवी जी का स्तुकाव भी उसी दिशा में था। विवाहोपरान्त

सामाजिक मान्यताओं की विषमताओं के कारण कवयित्री में एक मानसिक संघर्ष तंद्रित होता गया। गृहस्थी से उपराम होने के कारण वह अपने को पत्नीत्व रूप में न ढाल सकीं। ऐसी मनःस्थिति में सौंदर्य की वक्रावस्था की ओर झुकाव होना स्वाभाविक ही था। एक बार तो वह मित्रगुणी बनने को तत्पर थीं, किन्तु पारिवारिक कारणों से यह सम्भव न हुआ। सम्पन्नता जन्य स्त्री प्रकार के झुत्तार तथा सुख भोग पाकर भी महादेवी जी का जीवन सर्वथा स्काकिनी का जीवन है। श्लाहावाद आने के पश्चात् आप न तो पतिगृह ही गयीं और न ही पतिगृह, इस स्काकी जीवन की स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि “सन्तता के धरातल पर सुख-दुःख के वायान-प्रधान को यदि मित्रता माना जाय तो इस नाते संसार में मैं लौली हूँ”

अमुमय कौमल कहाँ तू

आगयी परदेशिनी री।”

कहने वाली कवयित्री ने जिस दिव्य साहित्य की सृष्टि की है, भारतीय साहित्य में उसका अद्वितीय स्थान है।

जब कुछ अपनी बात भी, १९५२ में एक सम्प्रान्त ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के बाद शिक्षा का प्रबन्ध घर में हुआ और जब सार्ह सूर्य की तैयारी कर रही थी तभी १९६७ में विवाह एक सब-इन्स्पेक्टर पुलिस से कर दिया गया। उस समय मेरी उम्र १५ साल की होगी। मेरी सहृदाल भी एक सम्प्रान्त और वार्षिक दशा में सम्पन्न थी। मेरे पति कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार पुलिसकर्मी थे। उनका पोस्टिंग सबसे पहले नौइक्लील, जि० मधुरा में हुआ था। हम लोग सभी धाने के पास एक मकान में रहते थे। उनकी ईमानदारी और कर्तव्य-निष्ठता से लोग इतने प्रसन्न थे कि उनकी प्रशंसा और शीर्ष से उन्हें दो स्टार से विभूषित कर दिया गया और नौइक्लील धाने का स्टेशन आफ़ीसर बना दिया गया। उनके समय चोरी, लकड़ी और उत्पीड़न जैसी वस्तु उनके क्षेत्र से समाप्त हो गयी थीं। और जनता को ही धाराय से रह

रही थी। इसी अन्तराल में मुझे दो पुत्री - तूपुर और नीतू प्राप्ता हुईं। मेरे पति को कविता लिखने का शौक था और प्रायः राग और रात को वे अपनी रखर कविता का पाठ किया करते थे और मैं मंत्रमुग्ध होकर उनकी कविताओं का रसास्वादन करती रहती थी। एक दिन प्रातः एक सुखदिव की सूचना पर उन्हें कुछ डकैतों को फाड़ने के लिए आमन्त्रित किया गया। वे स्वयं और राग में कुछ सिपाहियों को लेकर पैदल ही डकैतों को फाड़ने के लिए बल दिये। यह मनहूस दिन था २७-४-१९७१ का। डकैतों ने मुठभेड़ हुई और वैधव्य की वेदी पर शूर काल ने उनको मुकद्दे झीन लिया। पति की मृत्यु के बाद लगभग २ साह बाद मुझे एक पुत्र रत्न की प्राप्ति और हुई। मेरा जीवन तभी बिछुड़ गया और मैं अब वैधव्य को भोग रही हूँ। यह है मेरी कहानी कहानी।

जनवरी, १९८२ में मैं हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-विद्यालय में पी-एचडी के लिए अपना 'शायरवाद और प्रयोगवाद का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर एडिशन कराया। जब मैं पी-एचडी के विषय पर अध्ययन कर रही थी तब मैंने पन्त, निराला, प्रसाद और जयदेवी जी को पढ़ा। जून १९८३ के विहस्तर मास में मुझे एम० फिल० उपाधि के लिए पूर्ण करने के लिए कहा गया और एम० फिल० उपाधि के आंशिक प्रश्न पत्र के रूप में मुझे लघु शोध प्रबन्ध का विषय दिया गया - "यामा का गीति-शिल्प"। पहले तो मैं इस कार्य को करने के लिए तैयार ही नहीं थी क्योंकि मैंने पी-एचडी का ७५ प्रतिशत कार्य कर लिया था और मुझे जनवरी १९८४ में पी-एचडी उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करना था। परन्तु बाजारों एवं अन्यथा प्रो० नबीर मुहम्मद की आज्ञा हुई तो मैं इस कार्य में लग गई और नये तौर से 'यामा' का अध्ययन करने लगी। अध्ययन करते जाते जाते मुझे ऐसा लगा कि 'यामा' मेरी ही कहानी है। मेरा ही काव्य है। इस अध्ययन में मैं अपना सन्तुष्ट हो गई कि मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि -

“वफ़ा इस रूप की मैं हूँ रानी मतवाली

प्राणों का दीप जला कर कसती रहती दीवारों।”

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है- 'हिन्दी साहित्य में नीति-काव्य की परम्परा', द्वितीय अध्याय 'यामा का शिल्प विधान' है। तृतीय अध्याय में 'यामा का भाषा पक्ष' प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय 'यामा का प्रेय' नामक शीर्षक से मंडित है। इसके अन्तर्गत यामा का दर्शन, यामा में प्रकृति चित्रण, यामा का प्रेम निरूपण और यामा में रहस्यवादी परिकल्पना तथा पंचम अध्याय 'उपलक्षार' के रूप में प्रस्तुत है।

इस मौलिक लघु शोध प्रबन्ध को प्रोफेसर गुरुवर लाल नजीर मुहम्मद, अध्यक्ष एवं आचार्य, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-विद्यालय, अलीगढ़ के सुयोग्य निर्देशन में प्रस्तुत किया गया है। उनके सुस्पष्ट एवं पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन के फलस्वरूप ही इसे पूर्ण किया जा सका है। काः उनके प्रति कृतज्ञता और वाग्य व्यक्त करना औचित्यपूर्ण माना होगा।

इस यात्रा में मैं अपने पूज्य पिता श्री रामजीलाल शर्मा की अत्यन्त अनुमति हूँ जिन्होंने मेरे दूरे दिनों में मुझे पिता का ही प्यार नहीं दिया वरन् उन्होंने चौराहे पर सड़ी अपनी बेटी को एक अच्छे सिपाही के रूप में मार्ग दर्शित रहे। उनकी सहायता के अभाव में यह कार्य पूर्ण करना असंभव ही था।

मैं अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय के मौलाना वाग्य पुस्तकालय, दिल्ली विश्व विद्यालय पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे अपने सौजन्य और सौहार्द के सहायता दी है। मैं अपनी दो बेटियों- नूपुर और नीतू को विनम्रता नहीं कर पा रही हूँ जिन्होंने अपने अध्ययन रत होने पर भी मुझे इस कार्य को पूर्ण करने के लिए गुरुश्री के कार्य से मुक्त रखा। मैं उन सभी विद्वानों की वाग्य हूँ जिन्होंने मुझसे सँतुष्टि के तम उठाया है।

अर्चुनी कुमारी शर्मा  
(धीनगी सर्वेश्वरी शर्मा)

## विषयानुक्रमिका

### प्राक्कथन

प्रथम अध्याय : हिन्दी साहित्य में गीति काव्य  
की परंपरा

०- भक्ति युग

०६- रीति युग

०००- आधुनिक युग

००००- गीति का उद्भव और विकास

०००००- "यामा" में गीति तत्त्व की अभिव्यक्ति

द्वितीय अध्याय : "यामा का शिल्प- विधान"

तृतीय अध्याय : "यामा" का भाषा पक्ष

चतुर्थ अध्याय : "यामा का प्रेक्ष्य"

१- यामा का दर्शन

२- यामा में प्रकृति चित्रण

३- यामा का प्रेम- निरूपण

४- यामा में रहस्यवादी परिकल्पना

पंचम अध्याय : उपसंहार

मूल्यांकन एवं उपसंहार

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथों की सूची



प्रथम अध्याय : हिन्दी साहित्य में गीति काव्य  
की परम्परा

- भक्ति युग
- रीति युग
- वाधुनिक युग
  - गीति का उद्भव और विकास
  - "यामा" में गीति तत्त्व की समिव्यक्ति

## हिन्दी साहित्य में गीति-काव्य की परम्परा

गीति काव्य को संसार की प्राचीनतम काव्य-विधा माना जाता है। प्रत्येक समृद्ध भाषा के साहित्य का वादि रूप उसके गेय काव्य में ही मिलता है। हमारे देश में साहित्य और संस्कृति के जीवन का वादि काल वैदिक युग है। वाणी के प्रथम उद्गार हमारी इन्हीं वैदिक क्लावों में प्रकट हुए थे। भारती की मधुर भावपूर्ण वीणा की झंकार पृथ्वी पर पहली बार ऋग्वेद और साम वेद की क्लावों में ही सुनाई पड़ी थी।

वैदिक युग के बाद संस्कृत साहित्य में यत्र तत्र गीति काव्य के वर्ण दिहने देते जाते हैं। कालिदास के 'मेघदूत' में भी उसके कुछ गुण परिलक्षित होते हैं, किन्तु गेयता के गुण से समन्वित होकर गीति काव्य अपनी स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त कर सका। जयदेव के 'गीति गोविन्द' में। संगीतात्मकता से ओत प्रीत 'गीतिगोविन्द' के स्फुट गीतों में उस का जैसा उत्कर्ष और शैली का जैसा विशिष्ट रूप एक साथ मिलता है वैसा संसार के किसी भी साहित्य में मिलना दुर्लभ है। नाद सौन्दर्य की दृष्टि से 'गीति गोविन्द' विश्व साहित्य की एक अनौली रचना है।

हिन्दी में जयदेव से टकर रहे वाली प्रतिभा का अवतरण जिस कवि में हुआ, उसका नाम है विद्यापति। अपनी काव्य में अनन्त सरसता और माधुर्य भर कर विद्यापति के भादुर हृदय ने जिस तन्मयता के साथ शृंगार की विभिन्न स्थितियों को ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है, उसकी तुलना केवल जयदेव के काव्य से ही की जा सकती है। उनके ( रूप ) में मानो हिन्दी को अपना जयदेव मिला। लोक जीवन की मिठास और साहित्यिकता का पूर्ण सामंजस्य विद्यापति के गीतों की अपनी विशेषता है।

एक अद्भुत लय में उन्होंने अपने शब्द मुक्ताओं को पिरो दिया है। एक ओर जहाँ विनात्मकता, ध्वनि-सौन्दर्य, अलंकार विधान आदि कलागत विशिष्टताएँ दिखाई पड़ती हैं, वहीं पर दूसरी ओर सहज स्वाभाविकता, माधुर्य और लोक-जीवन की सरलता भी प्रतिबिम्बित है। एक ओर काव्य की शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह है तो दूसरी ओर जन जीवन के बीच प्रगल्भ होती हुई राग की रस धारा। उनके गीतों में रसिकता का प्राधान्य और मादक ऐन्द्रियता का अकिर्षण है। उन्हें राज दरबार का ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण मिला था। व्यक्तिगत जीवन में भी उन्हें (अपने आश्रयदाता के जीवन काल तक) किसी प्रकार का दुःख या अभाव देखा नहीं पड़ा। संभवतः इसीलिए उनके वियोग चित्रण में वह तन्मयता नहीं मिलती जो उनके संयोग शृंगार सम्बन्धी गीत-फलों में है।

भक्ति युग  
-----

कबीर हिन्दी के दूसरे गीतिकार कवि हैं।

उनके रहस्यवादी गीतों में निर्गुण ब्रह्म की प्रेम साधना मिलती है। कबीर की विरहिणी आत्मा अपने घट में व्याप्त प्रभु के लिए उसी प्रकार तड़पती है, जिस प्रकार किसी सगुण भक्त कवि का हृदय। प्रियतम पर ऐसा एकनिष्ठ अधिकार भक्त का ही हो सकता है, ज्ञानी अथवा दार्शनिक का नहीं। प्रेमा-

१- "सरस वसंत समय भल पाजो लि दखि फन बह धीरे ।

सफाई रूप वचन एक भासिए, मुख सौ दूरि करु चीरे ॥

तोहर वदन सन चान होअधि नहिं, जह्यो जतन विहि देला ।

एक बैरि काठि बनाओस नव कय, तह्यो तुलित नहिं भेला ॥

- विद्यापति फदावली पृ० २८६

२- मोरे अंगना चनन केरि गहिया

ता चदि कुरस्य काग रे ॥ आदि

- विद्यापति फदावली पृ० २८८

अनुभूति की तीव्रता और विरह वेदना का व्यापक प्रसार कबीर के गीत पदों में दिखाई देता है। वे अपने को "हरि की बहुरिया" कह कर अपने स्वामी से घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। प्रेम की कहीं कहीं बड़ी तीव्र अनुभूति दिखाई पड़ती है। ऐसे गीत लोक गीतों के माधुर्य से होड़ लेते प्रतीत होते हैं। हिन्दी की निर्गुण धारा के अन्य कवियों ने भी गेय पदों में अपने हृदय के सच्चे उद्गार व्यक्त किये हैं। अलौकिक प्रेम की मदिरा से उनके सबद सराबोर हैं।

### सूरदास

सूरदास भक्ति युग के प्रसिद्ध गीतिकार थे।

वात्सल्य और वियोग शृंगार के क्षेत्र में उनका प्रभाव लोक विदित है। सुर की प्रतिभा मुक्तक रचना के बहुत उपयुक्त थी। वे मूलतः गीतिकार थे। इस-लिए कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को लेकर भी कथानक के निर्वाह की विशेष चिन्ता उन्हें नहीं रही। वे मनोभावों के मनोरम स्थलों में रमण करने वाले कवि थे। माधुर्य और संगीतात्मकता उनके फलज्द गीतों की दो मुख्य विशेषताएँ हैं। इस अनुपम माधुर्य के भी दो मुख्य कारण हैं। एक तो ब्रज भाषा की सरसता को अपनी अभिव्यक्ति में समी लेने की पूर्ण क्षमता और दूसरे कृष्ण के मधुर, आकर्षक व्यक्तित्व के प्रति उनकी आन्तरिक आत्मीयता। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही पक्षों का समन्वित प्रभाव उनकी कला में परिलक्षित होता है।

१- साईं बिन दरद करेण होय ।

दिन नहिं कै रात नहिं निदिया, कास कहु, दुख होय ।

बाधी रतिया फिले पहरवा, साईं बिना तरस रही सोय ।

कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साईं मिले पुस होय ॥

- कबीर- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - परिशिष्ट - २-५२

संगीत का व्यावहारिक ज्ञान सूर को प्याँसा रहा होगा, इसीलिए विषय अथवा भावानुसूल राग चुनने में उन्होंने सफलता पाई। कुछ पदों में समयानुसूल रागों की व्यवस्था उनके संगीत-ज्ञान का प्रमाण है। संगीत की सभी राग-रागिनियों का सूर-सागर एक अनुपम वृद्ध कोष है। पहिली अनेक शताब्दियों से उसके पद संगीतकारों के कल कण्ठों से गाय जाते रहे हैं। गयता के गुण के अतिरिक्त शैली की सरलता, स्वाभाविकता और बालक की चैष्टाओं के चित्रण की अद्भुत क्षमता से युक्त उनके गेय पदों सहज ही हृदय छू लेते हैं। 'भ्रमरगीत' में अनुभूति की तीव्रता और भण्डित की वक्रता का अनोखा संगम अनायास उपस्थित हो गया है। कहीं कहीं करुणा का अतिरिक्त सब कुछ बहा ले जाता है, केवल भाव संगीत रह जाता है।

नन्ददास, परमानन्ददास और हितहरिवंश

सूर के अतिरिक्त इस काल के कवियों में विशेष उल्लेखनीय हैं- नन्ददास, परमानन्ददास और हितहरिवंश।

नन्ददास की 'रास फाव्यावी' में 'गीत

१- निसि दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस रितु हम पै जब तें स्याम सिधारे।

दृग वीजन लागत नहिं कवहुँ, उषर कपोल भर कारे।

कंचुकि नहिं सुखत सुनु सजनी, उर विच बहत फारे।

सूरदास प्रभु वंदु बढयो है, गोबुल लेहु उवारे।

कह लौं कही स्यामघन सुंदर विकल होत अति भारे ॥

- भ्रमरगीत सार, पृ० ३९६

गोविन्द 'जैसी सरस फावली मिलती है। फ- लालित्य के अति रिक्त वर्णन सौन्दर्य और अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से भी यह कृति कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। 'रास पंचाध्यायी' में भाषा का जो सुष्ठु और सुसंस्कृत रूप दिखाई देता है, वह संभवतः तुलसी, बूर आदि के फों में ही मिल सकेगा।

उनके 'भवरगीत' के प्रत्येक चरण में आरम्भिक दो पंक्तियाँ रोला की और फिर दोहे के दो फ अन्त में दस मात्राओं की एक टेक (जुनों ब्रजनागरी) रखी गई है। इससे छन्द में एक बहुमुक्त गति और संगीतात्मकता आ गई है। टेक की व्यवस्था से इन छन्दों की गयता स्वतः प्राप्ति है।

परमानन्ददास के किसी एक फ ने स्वामी वल्लभाचार्य जी को भाव विभोर कर दिया था। स्वामी हित हरिवंश की एक ही रचना मिलती है, जिसका नाम है 'हित चौरासी'। इसमें कुल ८४ फ हैं जो १४ रागों के अन्तर्गत रहे गये हैं। हित हरिवंश में भी माधुर्य भाव की सरसता और भाषा की स्निग्धता पर्याप्त है।

१- विहरत विफ विहार उदार नवत नदनदन ।

नव कुंभ घनसार बरस चर्चित तन चन्दन ॥

वितुलित वर वनमाल लाल जब चलत चाल वर ।

कोटि मदन की भीर सुख एक उखल चरन तर ॥ - रास पंचाध्यायी और

भवर गीत- पं० उदय नारायण तिवारी पृ० २७-२८

२- रामचन्द्र सुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६६

३- इस कवि के द्वारा रचित एक और रचना बताई जाती है 'खम खादसी' ।

४- जाय वन नीकौ रसा बनायो ।

पुलिन पवित्र, सुभग जमुना-तट, मोहन केतु बनायो ।

- रास पंचाध्यायी और भवर गीत- परिशिष्ट पृ० १०४

## तुलसीदास

विद्वानों ने उत्कृष्ट गीतकार के रूप में तूर को तुलसी की अपेक्षा अधिक ऊँचा स्थान दिया है। गयता की दृष्टि से तूर के फल-वद गीत तुलसी के गीतों से अधिक सफल सिद्ध हुए हैं, उनकी अपेक्षा वे अधिक लोकप्रिय भी हुए हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक मुख्य कारण तो इन दोनों कवियों के आलम्बन की स्वरूप विभिन्नता है। तूर के कृष्ण, तुलसी के राम की भाँति, गंभीर, शान्त और सरल नहीं है, वरन् चंचल और रसिक है, शायद उनकी अपेक्षा अधिक मधुर, मोहक और विचित्र भी। दूसरे तूर की अभिव्यक्ति भी तुलसी की अपेक्षा अधिक कठु, सरस और प्रसाद-गुण-युक्त है। विनय के फलों में तुलसीदास के हृदय की करुणा सत-सत प्रोतों में फूट पड़ी है। आत्माभिव्यक्ति, संगीत और प्रभाव ऐक्य आदि विशेषताओं से युक्त विनयपत्रिका हिन्दी गीत-काव्य की शृङ्खला में एक अनोखी कड़ी है, और उसका हमारे साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक अनोखी तन्मयता से विनय के फल और प्रोत है। संसार की भीषण प्रसन्नता से अलग कर बढ़ी आत्मिकता और व्यथा भरी दृष्टि से तुलसी ने अपने आराध्य की ओर देखा है, साथ ही हृदय का सम्पूर्ण समर्पण अपार श्रद्धा का वेग समेटे हुए उनके फल पर उमड़ता चलता है।

विनय पत्रिका में कवि के हृदय की आकुलता, प्रिय की कृपा प्राप्ति के लिए उसकी निरन्तर छटपटाहट व्यक्त हुई है। कहीं कहीं उसके लिए तुलसी की प्रतिभा ऐसी मधुर स्थितियों का भावन करती है कि हृदय वरबस भर जाता है। गीतावली में कथानक-निर्वाह की मर्यादा के

१- कबहुँक अम्ह अवसर पाया ।

भरीयो सुधि धाइवी कहु करुन कथा चलाय ।

दीन सब अंगहीन छीन मलीन अधी अघाय ॥

नाम ते भरे उदर एक प्रमुदासी दास कहाय ।

बुझि है 'सो है कौन', कहिवी नाम दत्ता बनाय ।

कारण इस भाव स्रोत को फूटने का अवसर नहीं मिल सका है, फिर भी कुछ स्थलों पर कवि की तन्मयता और राग भावना देखी ही बनती है। भाषा की साहित्यिक मनोस्ता और छन्द का संगीतिक प्रयोग गीतावली के पदों में भी कम नहीं है।<sup>२</sup>

### मीरा

मीरा का गीति-काव्य के विकास में अग्रणी स्थान है। ऐसी रागात्मकता, ऐसी संगीत और ऐसी कसक अन्यत्र नहीं मिलती। कृष्ण के लिए उसके भावुक नारी हृदय का एकनिष्ठ प्रेम, उनके सामीप्य सुख की अदम्य प्यास और उस सुख के अभाव में विवशता के अतृप्त-घूट ऐसे तीव्र भावावेश के रूप में प्रकट होते हैं कि मीरा के गीत सभी से अलग दिखाई देते हैं। सीधी, सरल और मौली उक्तियाँ सीधे मर्म पर आघात करती हैं और तिलमिला देती हैं। उसके गीतों का प्रभाव सीधे मर्म पर पड़ता है और सहृदय बिना भीग नहीं रह सकता। मीरा का आरिष्टाधिक जीवन सुखी नहीं रहा। सन्तों के ढिंङ बैठ बैठ कर लोकलाज, सोकर, कृष्ण के प्रेम में तन्मय मीरा को सामाजिक मर्यादा के बन्धन और पति की मृत्यु के बाद वैधव्य के अभिशापग्रस्त जीवन की वन्त्रणाएँ और उस पर देवर के अत्याचार सहने पड़े थे। इन सबसे ऊब कर

१- सजनी । है कौऊ राजकुमार ।

पैय चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील रूप आगार ॥

- गीतावली- अयोध्या काण्ड -२६

२- नयन सरोज सनेह सलिल चुवि मनहुं वरघ जल दीन्हौ ।

सुनहु तरवन । समपतिहिं भिसे वन में फितु मरन न जान्यौ ।

सहि न सक्यौ सो कठिन विधाता बड़ो पहु जाचुहि नान्यौ ॥

- गीतावली- वरुण्य काण्ड पद सं० १३



मीरा ने अन्य भक्तों की भाँति कृष्ण को एक मन से पुकारा था ।<sup>१</sup>

अनुभूति की तीव्रता दूर और तुलसी में भी मिलती है, लेकिन बहुत कुछ मीरा के दाम्पत्य भाव के कारण और स्वयं नारी होने की स्थिति के कारण उसके जैसी आत्मीयता और भावना का माधुर्य उन कवियों में नहीं । दाम्पत्य- रति की मिठास , दास्य तथा सस्य- भाव में कहाँ ? कृष्ण के व्यक्तित्व को मीरा अपनी नारी हृदय की सहज रागा-त्मकता की शक्ति से देवत्व के सिंहासन से बरबस मानवीय धरातल पर खींच लाती है ।

शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से देखा जाय तो मीरा के फ़ भी संगीत शास्त्र की अनेक राग-रागिनियों में पैदा मिलते हैं । मीरा ने शास्त्रीय राग ही नहीं, लोक धुनों भी अपनाईं । विभिन्न ऋतुओं एवं अवसरों पर गाई जाने वाली लोक रागिनियों की धुन , जैसे सावन , कजरी, झोली इत्यादि का उत्सव उनके फ़ों में मिलता है। शास्त्रीय रागों में बागेश्वरी , मैखी, पीतू, दरबारी , जैवन्ती , पूरिया, कल्याण, वानन्द मैरो आदि मुख्य हैं। सोरठ, मलार, विहाग, देश आदि के स्वर भी अपनाये गये होंगे । ' मीराबाई की मलार ' के नाम से मलार का एक रूप प्रचलित है लेकिन मीरा ने ही इसकी योजना की, यह सँदिग्ध है।<sup>३</sup>

१- साऊं ये दुसमन होइ लागे सवने लगूँ कढ़ी ।

तुम विन साऊं कौऊं नहीं है, डिगी नाव मेरी समुद कढ़ी ॥

तुम फलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कब की लढ़ी ॥

- मीराबाई की फ़ावली फ़ ११६

२- (अ) नंद नंदन बिलमाई, बदरा ने धरी री माई ॥ मीरा० फ़ा० १४०

(ब) लाड़ो लगर मीरी कहिया गहौ ना ।

मैं तो नार पराए घर की मोरे मरोसे गुपाल रहौ ना ॥

- मीराबाई की फ़ावली पृ० १७३

३- मीरा स्मृति ग्रन्थ पृ० १८२

मध्यकाल के सन्त, भक्त कवियों के फल हमारे समाज के बीच बहुत लोकप्रिय हुए। उन्होंने सैकड़ों वर्षों तक हिन्दी जनता को जलौकिक शान्ति और सुख पहुँचाया है। साथ ही एक बात और भी हुई इन फलों के माध्यम से भारतीय संगीत भी घर घर में बफाया जा सका। निराला जी के शब्दों में "सन्त सदावली से एक बहुत बड़ा उपकार जनता का हुआ। जहाँ संगीत की कला दरबार में तरह तरह की उसाढ़ पहाड़ों से पीड़ित हो रही थी, भावपूर्ण सीधा स्वर लुप्त हो रहा था, वहाँ भक्त साधकों और साधिकाओं के रचे गीत और स्वर यथार्थ संगीत की रक्षा कर रहे थे और जनता पूरे वाग्रह से यथासाध्य स्का अनुकरण करती थी।"

### रीतिकाल

हिन्दी के रीति युग का साहित्य समैया, वना-दारी और दोहा इन्हीं में समाविष्ट है। सूर, तुलसी और मीरा वादि कवियों की फल परम्परा का अनुकरण प्रायः नहीं हुआ। केशव और चिन्तामणि ने काव्य रचना की जो लीक बलाई थी, उस पर चलने वाले कवियों ने विषय बन्वा वस्तु ही नहीं शब्दावली भी परम्परा से ग्रहण की थी। वह युगमी जात्माभिव्यक्ति की स्वीकृति नहीं देता था। राजाश्रय में उदर पोषण प्राप्त करने वाले दरबारी कवि बफा सुख- दुःख, राग-विराग और बफा वाशा, वाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति अपने पूर्व निश्चित कवि कर्म की सीमा के कारण नहीं कर सके।

### बाधुनिक युग

#### भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गद्य के क्षेत्र में जो क्रान्ति भारतेन्दु ने की ,

वह पथ के चौत्र में नहीं कर सके । हिन्दी गीत काव्य के विकास में उनका स्थान निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि उसके अन्तरंग और बाह्य दोनों रूपों में कोई विशेष परिवर्तन भारतेन्दु द्वारा नहीं हुआ । परम्परा से प्राप्त रैली में ही उन्होंने एक बड़ी संख्या में शृंगारिक गीत फलों की रचना की । तुलसी, झर आदि भक्त कवियों के अनुकरण पर उनके लिखे हुए विनय के फल भी मिलते हैं । इनमें भी कोई नवीनता नहीं । शृंगार के फलों में उनके रसिक, प्रेमी व्यक्तित्व का आकर्षण अवश्य है । वे एक नितान्त भावुक, उदार सहृदय और संवेदनशील व्यक्ति थे । प्रेमरस की मदिरा में उनके व्यक्तित्व का पौर- पौर भीगा हुआ था । वे अपनी व्यक्तित्व और काव्य दोनों ही में रीति काल के दूसरे छे के रसलान, घनानन्द, जालम आदि रीति मुक्त कवियों की परम्परा में आ सकते हैं ।

भारतेन्दु के फल भी शास्त्रीय संगीत की राग-रागनियों में बंधे हैं। प्रत्येक फल के ऊपर शास्त्रीय राग का संकेत भारतेन्दु के संगीत ज्ञान का परिचायक है। शास्त्रीय रागों के अतिरिक्त होली, वसन्त आदि लोक रागिनियों का समावेश उन्होंने किया और उनमें उनकी मस्ती देखते ही बनती है। कहीं कहीं अलौकिक सौन्दर्य पर आतंकित चित्तुग्ध हृदय की स्थिति के मनोरम वर्णन उनके फलों में मिलते हैं। इन वर्णनों में परम्परा का आग्रह होते हुए भी पुनः की नवीनता और रैली की मणिमा आकर्षित करती है। इसी प्रकार वर्णांश के वर्णनों में छिड़ोले का वर्णन बहुत सरस है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु के नाटकों में कुछ गीत मिलते हैं, जिनमें कहीं कहीं देश भक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है। उस पराधीन युग में ऐसे स्वरों का महत्त्व असादिग्य है, किन्तु इनमें कवित्व की दृष्टि से कोई विशेष आकर्षण

१- होरी नाटक खेले मैं बन में ॥ भारतेन्दु ग्रन्थावली : होली पृ० ३८४

२- पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी भई ।

सख सलोनी सुन्दर सूरत निरस्त ही बलिहारी भई ॥ भा० ग्र० पृ० ३८५

३- पिय रंग बलि री छिड़ोरे भूल ॥ भारतेन्दु ग्रंथा० पृ० ५१७

नहीं है। भारतेन्दु के बाद प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि ने इस परम्परा को जीवित रखा। प्रताप नारायण जी का हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान 'गीत' प्रसिद्ध रहा।

### द्विविदी युग

द्विविदी युग की सबसे बड़ी और क्रान्तिकारिणी घटना थी- भाषा का परिवर्तन। सड़ी बोली ने कुछ काल के जर्जर संघर्ष के बाद ब्रजभाषा का सिंहासन छीन लिया। भारतेन्दु युग के गीत रीतिका-लीन पद परम्परा के अनुकरण पर ही लिखे गये थे। द्विविदी युग नये प्रभात का जागरण काल था। विचार, भाव और भाषा सभी क्षेत्रों में नवीनता का आग्रह सम्मुख आ रहा था। भारतेन्दु जी ने देश प्रेम के बीज बो दिये थे। इतिहास में पहली बार भारतेन्दु युग के कवियों ने अपनी प्यारी मातृभूमि की दीन दशा पर जाँचू बहाये थे, पहली बार उन्हें विदेशियों की शोषण नीति का बोध हुआ था। द्विविदी युग में देश प्रेम की यह भावना अधिक स्पष्ट और सशक्त रूप में व्यक्त हुई। देश प्रेम के अतिरिक्त इस काल में प्रकृति भी कवियों का प्रिय आलम्बन बनी। देशानुराग और प्राकृतिक शोभा से युक्त गीतों को लेकर हिन्दी के प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि 'श्रीधर पाठक' हमारे सामने आते हैं।

श्रीधर पाठक ने ब्रजभाषा में भी रचनाएँ की हैं और सड़ी बोली में भी। सड़ी बोली में लिखा हुआ उनका राष्ट्रीय भाव धारा का 'भारत गीत' बहुत प्रसिद्ध रहा है। उसकी सरस भावसिक्त पंक्तियाँ आज भी सहृदय का मन मोह लेती हैं।

१- सुविभाल पै हिमाचल, चरणों पै सिन्धु अंचल,  
उस पर विशाल सरिता, सित हीर-हार चंचल,  
मणि-बद्ध नील-नग का विस्तीर्ण पट अंचल,  
सारा सुदृश्य वैभव मन को लुभा रहा है ॥ आदि

- अन्तिका-काव्यालोचना के वर्ष २ अंक १ पृ० २६०

## मैथिलीशरण गुप्त

श्रीधर पाठक के बाद श्री मैथिलीशरण गुप्त

द्वितीय युग के प्रतिनिधि गीतकार हैं। 'भक्तिकार' के गीत सन् १९१३ और १९१६ ई० के बीच लिखे गये थे। गुप्त जी के इन वाय्यात्मिक गीतों पर रवीन्द्र नाथ की गीतांजलि का प्रभाव साफ दिखता है। गीतांजलि के काव्योत्कर्ष की आशा हम भक्तिकार से नहीं कर सकते, फिर भी उड़ी बोली की जिस वस्त्र - अवस्था में ये गीत रचे गये, जिस इतिवृत्तात्मक युग में ये भाव सूत्र पिरोये गये, उसकी सीमाओं को देखते हुए इनकी स्वस्थ और सुस्पष्ट शैली की प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि छायावाद के प्रायः सभी समर्थ कवियों ने (संभवतः प्रसाद को छोड़कर) इन गीतों से अवश्य प्रेरणा ग्रहण की होगी।

'स्वदेश संगीत' में राष्ट्रीय विचारधारा के ही गीत हैं। उनमें एक नयी स्फूर्ति और नवीन प्रेरणा है जो सामयिक जीवन के जागरण काल का बीजस्वी, उद्बोधन परक स्वर लिए हुए है। गुप्त जी के देश प्रेम में भी उनकी वाय्यात्म निष्ठा का स्वर गुला मिलता है। वे मातृभूमि की महत्ता वाय्यात्म की भूमि पर लाते हैं। 'हरि का ब्रीड़ा क्षेत्र हमारा भूमि भाग्य सा भारतवर्ष' कहकर वे अपनी देश भक्ति के साथ उत्कट ईश्वर भक्ति

१- (क) देखिए 'निराला' गीतिका (भूमिका)

(क) देखिए- सुमित्रानन्दन पन्त - स्वर्ण किरण पृ० १४६

'शैशव ही से रहा आपके प्रति वादार्पण।

ललित भण्डाति का किया प्रीतिवश वफा अनुकरण ॥

(स) देखिए- महादेवी वर्मा - पक्ष के साथी पृ० १६

२-स्वदेश संगीत- मैथिलीशरण गुप्त पृ० ११-१२

का भी परिचय देना नहीं भूलते । अपने देश की संस्कृति, भाषा , भूषा, आचार- विचार आदि सभी के प्रति उनके जैसी विशुद्ध निष्ठा कठिनाई से ही अन्यत्र देखने को मिलेगी ।

इसके पश्चात् गुप्त जी ने निरन्तर अपनी विभिन्न काव्य कृतियों में गीत रचना के नव्यतर प्रयोग किये । 'साकेत' के नवम सर्ग और यशोधरा में उनके गीत निश्चय ही उनकी काव्य- साधना का उन्नत रूप उपस्थित करते हैं। उनमें अमिव्यक्ति की प्रौढ़ता और सौन्दर्य भांगिमा का प्रवेश हो गया है। कुछ गीत तो हिन्दी की अदाय निधि हैं, जैसे यशोधरा के 'सखि वे मुझसे कह कर जाते', 'चाहे तुम सम्बन्ध न मानो', 'रे, मन , आज परीक्षा तेरी', 'ओ हे वनवासी', 'सखि वस्तु से कहा गया वे' आदि।

अमिव्यक्ति - पदा की ओर ध्यान देते समय गुप्त जी की शैली की सरसता आकृष्ट करती है, यद्यपि उनके गीतों में कहीं भी शायवादी कविता का परिष्कार और उच्च कोटि की कलात्मकता नहीं मिलती । फिर भी भाव की चमत्कारी ढंग से व्यक्त करने की कला गुप्त जी में कहीं कहीं पर्याप्त रूप से दिखाई पड़ती है। उनकी गीत- सृष्टि की

१- स्वदेश संगीत- मैथिलीशरण गुप्त - पृ० ११-१२

२- राम तुम्हें यह देश न भूले ।

धाम, धरा, धन जाय भले ही यह अपना उद्देश्य न भूले ।

निज भाषा निज भाव न भूले निज भूषा निज वेश न भूले ।

प्रभो तुम्हें भी सिन्धु पार से सीता का सदेश न भूले ।।

- मैथिलीशरण गुप्त- स्वदेश संगीत पृ० १

अनेक विशेषताओं को स्वीकारते हुए भी उसकी कुछ सीमाएँ दीखती हैं। विशेष रूप से गीत की कोमल भावभूमि के अनुरूप शब्द-चयन की अक्षमता सधे हुए कानों को अवश्य सटकेंगी। सभी समव तुकान्तों को ग्रहण करने का आग्रह गुप्त जी में बहुत दिखाई देता है। इस दोष ने अनेक स्थलों पर उनके गीतों की गरिमा को हानि पहुँचाई है। 'यशोधरा' जिसमें उनके जीवन की सर्वश्रेष्ठ गीत-रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनके इस दोष से मुक्त नहीं है। उसके एक गीत में 'चक्र' की तुक पर आये हुए 'तक्र', 'वक्र', 'शक्र' आदि शब्द एक विचित्र हास्यास्पद वातावरण उपस्थित कर देते हैं और रस-निष्पत्ति में बाधा पहुँचाते हैं। एक तो गुप्त जी शोटा छन्द लेते हैं, दूसरे जब अन्त्यानुप्रास में इस प्रकार की गड़बड़ें भी कर देते हैं, तो गीत एक तमाशना बन कर रह जाता है।

#### द्विवेदी युग के अन्य कवि

गुप्त जी के अतिरिक्त द्विवेदी युग के उत्कृष्ट गीतकारों में गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', बदरीनाथ भट्ट और सियाराम शरण गुप्त आदि प्रमुख हैं।

'सनेही' जी ने फर-शैली के कुछ गीत (काँटा और फूल, विस्मृति, प्रतीक्षा आदि) लिखे थे। बाद में कुछ वर्तमान-शैली के गीत भी उन्होंने सफलतापूर्वक लिखे। राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न उनके गीत 'राष्ट्रीय वीणा' और 'त्रिभूल तरंग' में संगृहीत हैं। उनमें एक

१- जल में शतदल तुल्य सरसते ।

तुम घर रहते, हम न तरसते ।

देखो दो-दो मेघ बरसते, मैं पछ प्यासी की प्यासी ॥

- मैथिलीशरण गुप्त- यशोधरा पृ० ११६

२- मैथिलीशरण गुप्त- यशोधरा- पृ० १२

विशिष्ट औजस्विता के दर्शन होते हैं। सनेही जी के गीतों में राष्ट्र-प्रेम के अतिरिक्त फारसी पद्धति पर चलते हुए रहस्यवादी आध्यात्मिक प्रणय की प्रधानता मिलती है<sup>१</sup>। कहीं कहीं प्रकृति भी आलम्बन बनी है, लेकिन ऐसे स्थल विरल हैं। भाषा की सरलता इन गीतों की विशेषता है। किन्हीं- किन्हीं पर लोकगीतों का प्रभाव भी पड़ा है और ऐसे स्थल पर्याप्त आकर्षक हैं<sup>२</sup>।

पं० बदरीनाथ भट्ट ने फर-शैली में दार्शनिक भावनाओं से युक्त कुछ अच्छे गीत लिखे थे। उन गीतों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें संगीत के भिन्न भिन्न रागों का निर्देश भी है। निर्दिष्ट रागों में विहाग, आसावरी, भैरवी, कालिंदा प्रमुख हैं।

सियारामशरण जी द्विवेदी-युग के सफल कवियों में गिने जाते हैं। उनकी काव्य-सृष्टि द्विवेदी-युग के अन्य कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक गंभीर और चिन्तन समन्वित है। विचारों के अवगाहन में उनकी प्रतिभा विशेष रूप से सचेष्ट रही। गांधीवाद के सिद्धान्त पक्ष की काव्यात्मकता-अभिव्यक्ति उनके काव्य में मिलती है। सन् १९१७-१८ के पश्चात् द्विवेदी-युग की हतिवृत्तात्मकता का पल्ला छोड़ कर वे चिन्तन की उदात्त

१- द्रष्टव्य- संपा० शम्भूरत्न त्रिपाठी- सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २५४

२- घूम घूम बरसी रे बदरिया ।

भूम भूम बरसी रे बदरिया ॥

दग्ध हृदय की ताप सिरानी ,

हुई मयूरों की मनमानी ,

देखो जिधर, उधर ही पानी ,

भरती सर, सरसी रे बदरिया ॥

- उपर्युक्त - सनेही अभिनन्दन ग्रंथ पृ० २६०



भूमि की ओर बढ़ गये । फलतः उनकी रचनाएं निरन्तर आत्मोन्मुखी, गूढ़ और विचार प्रधान होती गई ।

माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, पाण्डेय

द्विवेदी युग के बाद छायावाद की काव्यभूमि में प्रवेश करने से पूर्व हिन्दी के दो वर्य कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी- 'एक भारतीय आत्मा' और श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन के उज्ज्वल कृतित्व पर हमारी दृष्टि बरबस रुक जाती है। इन दोनों कवियों की समीक्षाओं ने प्रायः राष्ट्रीय धारा के अन्तर्गत रखा है, यद्यपि गहन रागात्मक अनुभूति और नवीन अभिव्यञ्जना प्रणालियों के सुष्ठु प्रयोग एवं वस्तुपक्षा की दृष्टि से भी राष्ट्रीय काव्यधारा से इतर अन्यत्र भाव-भूमियों में विचरण करने के कारण वे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। माखनलाल जी का मुकाव रहस्यमय प्रतीकों और शब्दों के लाक्षणिक एवं सैकितिक प्रयोगों की ओर अधिक रहा और नवीन जी दार्शनिकता के ऊहापोह में फँसकर अपनी प्रकृत धारा से हटते रहे । वस्तुतः ये दोनों ही हिन्दी के अग्रिन्त सहज, भाव-प्रण और सरस कवि हैं और गेय गीतों की परम्परा में तो इनका योगदान निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है।

श्री माखनलाल जी और नवीन के अति रिक्त भी एक महत्त्वपूर्ण नाम है, जिसका छायावाद युग के उद्भव काल में एक विशिष्ट योगदान रहा है। वह नाम है मुकुटधर पाण्डेय का । वस्तु और शैली दोनों ही दृष्टियों से मुकुटधर जी के अनेक गीत छायावाद युग के आरम्भिक वर्षों की श्रेष्ठ उपलब्धि कहे जा सकते हैं। आत्माभिव्यक्ति की अदम्य आकांक्षा उनके गीतों की मूल प्रेरणा रही है । सन् १९१७ का लिखा हुआ 'उद्गार' शीर्षक

१- मेरे जीवन की लघु तरणी । आँखों के पानी में तर जा ।

मेरे उसर का रिपा खाना । अहंकार का भाव पुराना ॥ आदि

- सुधीन्द्र- हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २७४

पर्याप्त लोकप्रिय हुआ था। उन आरम्भिक वर्षों में हुई पाण्डेय जी की कतिपय रचनाओं की प्रौढ़ता देखकर पाण्डेय जी की उदात्त काव्य प्रतिभा और प्रखर, नवीन्मेषशालिनी, कल्पनाशक्ति की दाद देनी पड़ती है।

पाण्डेय जी के बाद छायावाद युग के प्रसिद्ध कवि प्रसाद, निराला, फाँ, महादेवी जी आदि कवियों की काव्य सृष्टि से समृद्धि होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह काव्यद्वारा वर्तमान युग की सर्वाधिक सशक्त और लोकप्रिय विधा के रूप में समावृत्त हो चुकी है।

## " गीति " का उद्भव और विकास

मानव के उच्चारण प्रयत्न का सर्वप्रथम स्फुरण गीत रहा होगा। जैसे प्रभात की " प्रथम रश्मि " का स्पर्श पाकर रंगिणी चहचहा उठती है, मधों को उमड़ता घुमड़ता देस मयूर नाच उठता है, वसन्त की आता देस को किल कूक उठती है, उसी प्रकार मानव के हर्ष हूक के साथ गीत भी फूट पड़ा होगा, क्योंकि मानव हृदय के हर्ष-विषादमय स्पन्दनों के साथ गीत का सहज सम्बन्ध है। इन कवियों की निम्न पंक्तियाँ गीत के मूल को भली भाँति व्यक्त कर रही हैं-

" वियोगी होगा पहला कवि,  
बाह से उफ़ा होगा गान  
उमड़ कर बाँसों से चुफ़ाप,  
बही होगी कविता अनजान ॥ १

०                      ०  
मैं रोया तुम कहते हो गाना ।  
मैं फूट पड़ा, तुम कहते हृन्द बनाना ॥ २

०                      ०  
मैं अलु-तरल ,

०                      ०  
मैं फूट पड़ी लै स्वर वैभव । ३

" वियोगी होगा पहला कवि , बाह से उफ़ा  
होगा गान " श्री सुमित्रानन्दन पन्त के इस विचार से गीतिकाव्य के उद्भव

१- पन्त- पल्लव

२- बच्चन

३- महादेवी वर्मा- दीपशिखा

की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः गीत के लिए मानसिक आवेश, रागात्मिकता तथा करुणा की व्यापकता आवश्यक है। जब कभी प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा का अवलोकन कर, पक्षियों के कलख तथा निर्मरों के सजल गान श्रवण कर, अथवा किसी घायल की करुणा पुकार से द्रवित होकर किसी संवेदनशील भावुक का मन उनसे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो उसकी वाणी संगीतमय होकर स्वानुभूति को मुखरित करने लग जाती है। आदिमानव से आज तक भावावेशमयी अवस्था विशेष की अभिव्यक्ति ही विश्व के प्रत्येक समाज-सम्य तथा असम्य - में गेय पदों में उपलब्ध होती है। आदि कवि करुणा से ही 'मा निषाद प्रतिष्ठात्'----- श्लोक का जन्म इस बात की पुष्टि करता है कि शोक से ही श्लोक का जन्म होता है।

गीत में वैयक्तिक अनुभूति का प्राधान्य होता है, जिसका सम्बन्ध संवेदनशील हृदय से है, भावावेश को प्रकट करते हुए वाणी संगीत का आश्रय लेती है तभी गीत में भावप्रणता का समावेश होता है। रागात्मकता, संगीतात्मकता तथा तीव्रता गीत के प्रमुख तत्त्व होते हैं जिनसे संज्ञाप्ति, प्रभाव तथा आत्मनिष्ठा आदि गुण निसर्गतः गीत में आ जाते हैं।

हिन्दी साहित्य में गीत को अंग्रेजी के 'लिरिक' का पर्यायवाची कहा जाता है। वैसे तो अधिकांश हिन्दी साहित्य गेय है किन्तु छायावाद युग से पूर्व आदर्श, उपदेश आदि बहिर्मुखी वृत्ति प्रधान थी, किन्तु छायावाद में आत्मनिष्ठ चेतना को प्रमुखा मिली जो कि गीतिकाव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त थी, इसलिए इस युग में ही गीतिकाव्य को पूर्ण वैभव प्राप्त हुआ। छायावाद युग के चार कवियों श्री जयशंकर प्रसाद, निराला, पन्त तथा महादेवी वर्मा को पाकर हिन्दी का गीतिकाव्य जिस चरमावस्था को पहुँचा उसे समझने के लिए गीतिकाव्य के स्वरूप तथा विकास का अध्ययन करना आवश्यक जान पड़ता है।

गीतिकाव्य के स्वरूप, गुण तथा उत्पत्ति आदि पर विचार करते हुए विभिन्न विद्वानों ने जो मत व्यक्त किये, उनमें से कुछ पर दृष्टिपात करना उचित होगा ।

साहित्यदर्पण के अनुसार

“ शुद्ध गानं गयफम् स्थित पाठ्यं तदुच्यते । ”

( ताल, लय, स्वर आदि से युक्त गाये जाने वाली रचना गीति है। )

वैदिक साहित्य में

गा, गातुः , गातृः, गीति, गीतिम् , गीतिकम् आदि शब्दों का उल्लेख बार बार हुआ है।

हमचन्द्राचार्य

हमचन्द्राचार्य जी ने लिखा है कि -

“ गीतिं शब्दित गानयो । ”

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार

“ लिरिकल पोइट्री- द पोइट्री विच केन बी संग और केन बी सपीटेड टू बी संग टू एकोम्पनीमेंट आफ द म्यूजिकल इन्स्ट्रुमेंट । ”

जोहन ड्रिक्वाटर

“ लिरिक इज प्रोजेक्टेड थ्रो ए मूड आफ

हायर इन्टेनसिटी । ”

डब्लू० एच० हडसन

“ लिरिकल पोइट्री, इन द ओरिजिनल मीनिंग

मीनिंग आफ दी टर्म, वाज़ पोइट्री कम्पोज़्ड टू बी सँग टू द एक्स्प्रीमेंट  
आफ ब्री और चारप् । इन दिस सेन्स, द पोइट हज़ प्रिन्सिपली एक्स्पोज़्ड  
विद हिमसेल्फ । ”

बर्नेस्ट रीस

” सच्चा गीत वही है जो भाव या भावात्मक  
विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट है । ”

हीगेल

” कवि संसार के अन्तःकरण में पहुँच कर आत्मा-  
नुभूति करता है, तब उसे चित्तवृत्ति के अनुसार काव्योचित भाषा में व्यक्त  
करता है । अतएव गीतिकाव्य के अन्य अंगों से आत्माभिव्यक्ति, भाव और  
कल्पना के कारण भिन्न हो गया है । जब कवि शान्त और समन्वित चित्त-  
वृत्ति में होता है तब कल्पना में बह्य जगत् प्रधान हो जाता है, जिससे भाव  
की उत्पत्ति होती है। इसी से गीत का जन्म होता ।

डा० राम कुमार वर्मा

” गीतिकाव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टि-  
कोण से ही होती है, उसमें विचारों की स्वरूपता रहती है । ”

महादेवी वर्मा

” सुख- दुःख की भावाविशमयी अवस्था का विशेष  
गिने चुने शब्दों में स्वर साधना का उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है । ”

डा० नगेन्द्र  
-----

“ विश्व के लगभग सभी साहित्यों में- गीत परम्परा आदि काल से ही चली आती है। या यों कहिए कि कविता का मूल रूप ही गीत है। ”

उपर्युक्त परिभाषाओं से गीति काव्य की प्रकृति तथा उसके तत्त्वों का परिचय मिल जाता है। भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा। हिन्दी में भी गेय काव्य को “ पद ” कहा जाता था। यहाँ पर भावावेश के साथ संगीत को विशेष महत्त्व दिया जाता रहा। आज पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से गीति काव्य के लिए आत्माविव्यक्ति, भावात्मकता, नाद, कृन्द, लय, सहजता, आवेग, संक्षिप्तता तथा प्रभावान्विति आदि गुण स्वीकार किये जाते हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा की परिभाषा में गीत की सभी विशिष्टताओं का समन्वय मिलता है। सुख- दुःख मानव मन की मूल अनुभूतियाँ हैं, बाह्य जगत् तथा अन्तर्जगत् के रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना से भावावेश की अवस्था का आविर्भाव होता है और यदि वह शब्द- योजना नाद- सौन्दर्य तथा स्वर- साधना के उपर्युक्त हों तो एक महान् गीत की सृष्टि सम्भव है। अपने विचार में महादेवी जी ने भारतीय संस्कृति तथा जीवन- पद्धति के सिद्धान्तों को ही मान्यता दी है। भाव, स्वर तथा गेयता का पार- स्परिक सम्बन्ध प्राचीनता तथा व्यापकता का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है कि -

“ स्वर सामंजस्य में बँधा हुआ गेय काव्य मनुष्य हृदय में कितना निकट है, यह उदात्त, अनुदात्त स्वरों में यदि वेदगीत तथा अपनी मधुरता के कारण प्राणों में समा जाने वाली प्राकृत पदों के अधिकारी हम मली भाँति समझ सकें हैं। ”

गीतों में वैयक्तिक सुख-दुःख की अभिव्यक्ति ही मार्मिकता का आधार होती है। सामान्यतः गीति काव्य के दो पक्ष स्वीकार किये जाते हैं -

१- जिसमें भाव, विचार, इच्छा, कल्पना, उद्गार तथा अन्तर्जगत् का चित्रण होता है।

२- जिसमें भाव, भाषा का सामंजस्य, रुन्द, सरलता, सुकुमारता, संगीत, भाषा शैली और संक्षिप्तता हो।

रागात्मकता युक्त गीत को हृदय के समान सरल, सुन्दर, तरल तथा भावपूर्ण होना ही चाहिए। वौद्धिकता, दार्शनिकता अथवा सैद्धान्तिक गाम्भीर्य से गीत बोझिल हो जाते हैं, वे भाव केन्द्रों से तादात्म्य नहीं कर पाते। भाव अथवा प्रकरण के सदृश गीत का बहिरंग भी सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक हो इसके लिए कवि रूप, ध्वनि, संगीत तथा तय का समावेश करता है। पर्वतीय निर्झर के समान प्रवाहमान गीत में ही प्रभावित होती है।

गीति काव्य सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित विशेषतायें अनिवार्य मानी जाती हैं-

१- आत्मनिष्ठ भावना

२- आरम्भ से अन्त तक एक ही भाव की अन्विति।

३- भावना का चरमोत्कर्ष

४- स्वतन्त्रता

५- संक्षिप्तता



गीतिकाव्य साहित्य का प्रमुख अंग है । इसका वर्गीकरण करते हुए विद्वानों ने जो कठिनाई अनुभव की उसका कारण प्रगति-शील मानवता के साथ गीत की नित-नवीन परिवर्तित होने वाली शैलियाँ, रूप तथा भावनार हैं । साधारणतया गीत के दो मुख्य भेद होते हैं :

१- लोकगीत

२- साहित्यिक गीत

लोकगीत में सामाजिक जीवन, भावना तथा पौरुष का प्राधान्य होता है । साहित्यिक गीत व्यक्तिगत अनुभूति, विचार तथा संवेदना पर आधारित होते हैं । विषय अथवा भावना के अनुसार इसके अनेक भेद हैं- जैसे- धार्मिक गीत, देश भक्ति विषयक गीत, प्रेम गीत, शोक गीत, प्रकृति सम्बन्धी गीत, विचारात्मक गीत तथा उत्सवों से सम्बद्ध गीत । ऐतिहासिक कालक्रम, जातीय भावना मानसिक चेतना, प्रतिभा तथा ज्ञान के आधार पर भी गीतों का वर्गीकरण किया गया है। पश्चात्त्य साहित्य का सम्पर्क होने के साथ गीतिकाव्य के अन्यान्य रूपों का समावेश हुआ ।

कुछ विद्वानों ने गीतों को निम्नलिखित रूप से विभाजित करने का प्रयत्न किया है -

१- प्रेम गीत

२- व्यंग्य गीत

३- धार्मिक गीत

४- शोक गीत

५- युद्ध गीत

६- वीर गीत

७- नृत्य गीत

८- सामाजिक गीत

९- उपालम्भ गीत

१०- गीति नाट्य

११- सम्बोधन गीत

१२- सानेट चतुर्दशपदी

इसके अतिरिक्त विकास क्रम, व्यावहारिक तथा प्रातिमं ज्ञान के आधार पर भी गीति काव्य का वर्गीकरण हुआ है।

प्रत्येक देश के साहित्य का प्रादुर्भाव गीतों से ही माना जाता है। भारतीय साहित्य भी इसका अपवाद नहीं। भारतीय गीति-परम्परा विश्व में प्राचीनतम स्वीकार की गई है। ऋग्वेद में पुरुष, उषा, धीसूक्त आदि में ऋषियों में जो संगीतात्मक आत्माभिव्यक्ति थी वह अपूर्ण है, वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा में चेतना का आभास पाकर जिस परमसत्ता का साक्षात्कार किया उसकी अनुभूतियां गीत में ही व्यक्त हुईं। सामवेद तो अपनी संगीतात्मकता में आदि गान ही माना जाता है। वैदिक साहित्य में लोक गीतों जैसी स्वाभाविकता है। यह युग सामूहिक सम्यक्ता और संस्कृति का युग था, इसलिए युग की की आत्माभिव्यक्ति भी सामूहिक रूप से हुई। इन गीतों में संगीत की प्रसुक्ता है।

वैदिक गीति काव्य में स्वर की प्रधानता थी, परवर्ती लौकिक संस्कृत साहित्य में गीत के आधार लय तथा नाद मान लिए गये। संस्कृत गीति की परम्परा का प्रारम्भ ङ्गीच वध से अभिभूत आदि कवि वाल्मीकि की करुणा पूर्ण वाणी से हुआ। शोकावस्था में निःसृत वाणी ही श्लोक बन गई। रामायण की सृष्टि गाने के लिए ही हुई थी।

पौराणिक साहित्य में विवरणात्मक प्रवृत्ति प्रमुख है, श्रीमद्भागवत के अनेक प्रांगों में गीत की अलौकिक मधुरता मिलती है। 'फिंला गीत', 'मिच्छु गीत', 'प्रमर गीत' आदि स्थलों में मार्मिकता, व्यंग्य, विवेक आदि विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इस युग तक विभिन्न छन्दों तथा इन्द्रवज्रा, शिखरिणी, रथोदता आदि का भी विकास हो चुका था, किन्तु इनमें गेय तत्त्व भी प्रमुख रहा।

संस्कृत साहित्य में मुक्तक, स्तोत्रों, दूतकाव्यों आदि में गीति-परम्परा का विकास हुआ है। ऋतुसंहार, अमरकशतक, आर्या-सप्तशती, भर्तृहरि शतक में आध्यात्मिक भावनाओं से अभिभूत आत्मनिवेदन की सहज शैली विकसित हुई। अश्वघोष कृत 'गाण्डिस्तोत्र गोथा', पुष्पकृत 'शिव महिम्न', मयूरभट्ट कृत 'चण्डीशतक' इस वर्ग की प्रमुख रचनाएँ हैं। स्वामी शंकराचार्य जी द्वारा रचित - रामभुजंग स्तोत्र, शिवभुजंग स्तोत्र, सौन्दर्य लहरी आदि सहज, सरल तथा संगीतात्मक हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने उपर्युक्त गीति काव्य पर विचार करते हुए लिखा है कि -

“ तत्त्व की सरल व्याख्या, प्रकृति की रूपात्मकता, सौन्दर्य और भक्ति की सजीव साकारता, लौकिक जीवन के आकर्षण चित्र आदि इन गीतों को बहुत समृद्ध कर देते हैं। चिन्तन के अधिक विकास ने गीत के स्थान में गद्य को प्रधानता दी, पर गीत का क्रम लोक जीवन को घेर कर विविध रूपों में फैलता रहा। ”

संस्कृत का गीतिकाव्य जयदेव के 'गीति गोविन्द' में अपनी चरमावस्था को प्राप्त हुआ। भाषा, भाव तथा संगीत के अद्भुत समन्वय से जयदेव ने जो पीथुषा धारा प्रवाहित की उसने तत्कालीन समाज को आशा, उल्लास तथा जीवन शक्ति का अमर सन्देश प्रदान किया था।

संस्कृत साहित्य के साथ-साथ पाली तथा प्राकृत में भी गीति काव्य का विकास हुआ। इस साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा। बौद्ध धर्म जीवन की विषमता से उत्पन्न हुआ था, परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म ~~बौद्ध धर्म~~ वैभव, विलास की ओर आकृष्ट नहीं हुआ। किन्तु बुद्ध की महान् करुणा से सिंचित जिन

गीतों की दृष्टि हुईं उनमें सुख-दुःख समन्वित करुणा का अत्यन्त मार्मिक ,  
मधुर चित्रण हुआ है । धर तथा धरी गाथायें क्रमशः वैराग्य, निर्वेद और  
सौन्दर्य की करुण गाथायें हैं। विवृति प्रधान धर गाथाओं में विहग, वन,  
फर्त आदि के प्रति प्रशान्त अनुराग वैदिक कणियों के प्रकृति प्रेम की याद  
दिलाता है। जैसे-

‘ सुनीला सुसिखा सुपुष्पासचित्त पत्तच्छदना विहंगमा,  
सुसुषुप्तोऽस्य नितामिगीज्जनों ते तं रमिस्सन्ति वनम्हि महीयनं ॥ ’

( जब तुम वन में ध्यानस्थ बैठे होगे तब गहरी नीली ग्रीवा वाले सुन्दर  
शिक्षाशोभि तथा शोभन पक्षों से युक्त आकाशचारी विहंगम अपनी समधुर  
कलख द्वारा घोंघ भरे मेघ का अभिनन्दन करते हुए तुम्हें आनन्द देगे । )

धरी गाथाओं में भिक्षुणियों ने नखर सौन्दर्य  
को परिवर्तनशील पद्धति के माध्यम से व्यक्त किया । इनमें भावुकता, सरसता,  
कीमलता तथा संगीतात्मकता का अद्भुत समन्वय हुआ है। धर धरी गाथाओं  
के पश्चात् सिद्ध साहित्य में भी गीति काव्य के श्रेष्ठ रूपों की उपलब्धि हुई  
है । सिद्ध लोग पूर्णतया संगीतज्ञ थे । सिद्धों के नाम से अनेक राग- रागनियों  
का नामकरण भी हुआ जैसे गुजरी, शवरी, मल्लारी, देवकी आदि । सिद्धों  
में सरस्पा, लुहिपा अथवा लुहपा, कराहपा अथवा कुक्कुरिपा आदि की रचनायें  
गीत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । सिद्धों के गीत अत्यन्त संक्षिप्त होते थे ,  
साम्प्रदायिक रचनाओं में गुह्यता तथा अस्पष्टता का समावेश होने के कारण  
कतिपय आलोचकों ने इन्हें काव्य में स्थान नहीं दिया । किन्तु महापण्डित  
राहुल जी के मतानुसार -

“ लाखों नर- नारियों को उनमें रस- रस तरह  
की आत्म- वृत्ति मिलती थी और आज भी इस तरह की मनोवृत्ति रखने वाले

कितने ही पाठकों को वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है, इसलिए उन्हें कविता मानना ही होगा । ”

इस प्रकार भारतीय गीतिकाव्य की महान् परंपरा को लेकर हिन्दी गीति-काव्य विकासोन्मुख हुआ । आदिकालीन हिन्दी कवियों में वीर गीतों की प्रसुक्ता थी, उसरो ने उसमें लोक जीवन की सरसता तथा फार्सी साहित्य की मादकता का मिश्रण किया । विद्यापति ने 'गीतगोविन्द' की शृंगारिक तथा भक्तिपरक भावना को जागे बढ़ाया । भक्तिकालीन कवियों की भावनायें, आत्म निवेदन होकर साकार हो उठीं । निर्गुण भक्तों ने सौन्दर्य तथा शक्ति के आगार अपने आराध्य की जीवन लीलाओं का गान किया । कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के भक्तिपरक गीतों में इस युग की भाषा, भावना तथा कलात्मकता का सौन्दर्य देखा जा सकता है। रीतिकाल में गीतों के अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं थीं । घनानन्द, बोधा, आलम आदि में भावामिव्यक्ति की तीव्रता होने पर भी संगीतात्मकता का अभाव है । वस्तुतः गीति काव्य का समुचित विकास आधुनिक काल में ही हो सका ।

भारतेन्दु युग ने वर्णकाल के समान साहित्य में विभिन्न प्रवृत्तियों को जन्म दिया । इस युग अतीत तथा वर्तमान, को जोड़ने के प्रयास हुए थे । प्रकृति चित्रण, राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार तथा धार्मिक विकृतियों पर व्यंग्य इस युग की प्रमुख भावनायें थीं । परिणामतः इस युग के गीति प्राचीन और अर्वाचीन प्रवृत्तियों से युक्त रहे । द्विवेदी युग में भाषा, भाव तथा अभिव्यक्ति में आदर्शवाद पर आधारित उपदेश तथा उपयोगिता का दबाव इतना अधिक था कि कवि की कोमल भावनाओं की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति सम्भव न हो सकी । बाह्य जीवन के संघर्ष, पश्चात्य सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य के प्रभाव, दार्शनिक चिन्तन के परिणामस्वरूप आयावाद युग ही गीति काव्य को उसकी पूर्णता प्रदान कर सका । आयावाद

युग के महान कवियों में सर्वश्री प्रसाद, पन्त , निराला से भी अधिक गीतों में सफलता पाने वाली महादेवी वर्मा के महत्त्व को समझने के लिए गीति काव्य सम्बन्धी कवयित्री की धारणा तथा उनके गीतों का अध्ययन उपयुक्त होगा ।

“ सुख दुःख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का, गिने चुने शब्दों में स्वर साधना का उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। ”

श्रीमती वर्मा का उपर्युक्त वाक्य गीति काव्य के सभी अपेक्षित गुणों को पूर्णतया स्पष्ट करता है। इसमें तीन बातों पर विशेष बल दिया गया है- भावावेशमयी अवस्था विशेष, गिने- चुने शब्द तथा स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण । सवेदनशील कवि में भावातिरेक की आवश्यकता होती है, इसी का संस्कार हो जाये तो वह मर्मस्पर्शी हो जाती है। अपने दुःख को व्यक्त करने के लिए आर्त- क्रन्दन , हाहाकार, आसू बहाना, निश्वास अथवा निस्तब्धता आदि अनेक उपाय हो सकते हैं किन्तु गीतिकार को “ आतंक्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को, दीर्घ निश्वास में छिपे संघम से बाधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा । ”

गीत में वैयक्तिक सुख-दुःख ही व्यक्त होते हैं । वैयक्तिक भावनायें, अधिकाधिक हृदय में समाकर उन्हें सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों की कोमलता का संस्पर्श करवाकर, एक ही भाव समुद्र में मग्न तभी कर पाती है जब गीतिकार किसी बीति क्षण में स्मृति में खोकर अथवा अपनी आत्मा का विस्तार करके विश्वात्मा तक व्याप्त हो जाये । प्रसाद जी ने इसी स्थिति

१- यामा- महादेवी वर्मा - अपनी बात ( २) पृ० ७

२- ,, ,, पृ० ७

को संकल्पात्मक अभिव्यक्ति माना है। महादेवी जी का तो विश्वास है कि दुःख का एक बुँद आसू हमें विश्वकर्म जीवन की अनुभूति करवा देता है। इसीलिए करुणा, वियोग अथवा दुःखानुभूति को अधिक सौंदर्यशील माना गया है। कवयित्री के शब्दों में - “ जो असंख्य व्यक्तियों के दुःख में अपना दुःख खोकर बोलता है, उसके कण्ठ में असीम बल रहना अनिवार्य है। ”

भावावेशमयी अवस्था विशेष के पश्चात् महादेवी जी ने गीत का दूसरा तत्त्व माना है- “ गिन चुने शब्द ”। भावाभिव्यक्ति के लिए आतुर होकर मानव ने अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। आंगिक चेष्टाओं, संकेतों के अतिरिक्त चित्रलिपि आदि अपने अपने समय में उपयोगी रहकर भी सम्पूर्ण नहीं। सामाजिक दृष्टि से सार्थक शब्द समूह को ही अभिव्यक्ति का पूर्ण माध्यम कहा जा सकता है। महादेवी जी लिखती हैं- “ मनुष्य को मनो-विकार और विचार प्रकृति से प्राप्त हुए हैं, परन्तु उन्हें व्यक्त करने का साधन भाषा स्वयं उसका सृजन है। ” जीवन के उत्तरोत्तर विकास के साथ भाषा भी विकसित होती जा रही है। भाषा का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तःकरण से होने के कारण वह उसके सम्पूर्ण भाव जगत् का संचालन करने की क्षमता रखती है। अतः भाषा भावों के अनुकूल चलती है तथा दूसरों के मन में भावों का संप्र-  
 षाण भी करती है। गीत की भाषा में सरलता, सरसता तथा चित्रमयता के साथ संक्षिप्तता भी आवश्यक है। भावावेशमयी अवस्था विशेष इतनी वेगमयी होती है जिस थोड़े शब्दों में ही व्यक्त किया जा सकता है। अतः गीतिकाव्य के शब्द, अर्थ, ध्वनि, नाद तथा वृत्ति आदि भी उस भाव विशेष का वहन करने में समर्थ होने आवश्यक हैं।

महादेवी वर्मा के मतानुसार - “ कविता के लिए विशेष शब्द चयन आवश्यक हैं, व्यंजित अर्थबोध की भाव परिणति अनिवार्य है तो शब्द विशेष क्रम में कन्दायित रहेंगे ही। ” अतः जिन शब्दों को गिन चुनकर गीत में स्थान दिया जाता है उनमें भी गीतकार की प्रतिभा का

परिज्ञान होता है।

ध्वनि और लय की दृष्टि से काव्य और संगीत के मध्य विभाजन रेखा अत्यन्त सूक्ष्म है। परन्तु उनकी परिस्थिति में परिवर्तन की शक्ति नहीं। काव्य सार्थक समूह है और संगीत लय प्रधान ध्वनि समूह। काव्य में गेयता है पर अनिवार्य नहीं, संगीत में अर्थवत्ता सम्भव है, परन्तु अनिवार्य नहीं। संगीत द्वारा विशेष रागात्मिकता वृत्ति को व्यक्त किया जाता है। अतः जिस अंश में अनुभूति की तीव्रता संगीत योजना के उपयुक्त शब्दों से युक्त हो वही गेय कहलाता है। गीत गाना, सुख-दुःख की अनुभूति में गुन-गुनाना, स्मृति अथवा श्रम परिहार के लिए मस्ती में आकर वाणी का संगीतमय हो जाना मनुष्य की आदिम मनोवृत्ति है। संगीतमय वाणी किसी को मीतन्मय बना सकती है।

महादेवी जी के शब्दों में - “स्वर के साथ जब सार्थक शब्दावली की संगति हो जाती है, जब संगीत तथा काव्य दोनों व्याप्ति तथा गहराई की दृष्टि से जीवन की अलक्ष्य सीमारें छू लेते हैं।” इस प्रकार महादेवी जी के गीतिकाव्य सम्बन्धी विचारों में उनकी कल्पना, प्रतिभा तथा चिन्तन की गहनता प्रकट होती है। उनका गीतिकाव्य इसी आस्था का प्रतिरूप है।

महादेवी वर्मा के गीतों में आद्यन्त समरूपता है। विरह वस्तु को लेकर उन्होंने जो साहित्यिक रचनारंग गीत रूप से प्रदान की उनका वर्गीकृत सामान्यतः तीन प्रकार से किया जा सकता है। जैसे-

- १- दार्शनिक रहस्यवादी
- २- प्रेममूलक रहस्यवादी
- ३- प्रकृति मूलक अथवा प्रतीकात्मक रहस्यवादी गीत



उक्त तीन रूपों में उस अव्यक्त सत्ता तथा उसे पाने की साधना में जो भी अभिव्यक्ति हुई है उसे स्थूल रूप में भले ही वर्गीकृत कर दिया जाय किन्तु भाव रूप में वे सभी एक ही गन्तव्य की ओर उन्मुख हैं ।

दार्शनिक रहस्यवादी गीतों में वे गीत आते हैं जिनमें ब्रह्म, आत्मा, जीव, संसार, चाणभंगुरता, परिवर्तनशीलता, माया, प्रकृति आदि की चर्चा हुई है। महादेवी जी ने वेदान्त से ब्रह्म की धारणा ग्रहण की। ब्रह्म ही एक मात्र लक्ष्य, शुद्ध चेतन, जगत् का कारण, संचालक अथवा कर्त्ता है। निराकार ब्रह्म के प्रति विरह अथवा प्रणय अभिव्यक्ति के लिए सुरुणा निराकार के प्रति मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप करके, प्रियतम तथा प्रियतमा के अस्तित्व की कल्पना की है। मानवीय सम्बन्धों में अनुराग जनित आत्म विसर्जन की मधुरता तथा सरसता का समावेश होने पर ही मन का अभाव मिल सकता है। व्यापक, असण्ड, चेतन के अनेक रूपों व्यापार में एक ही मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण अपने आप में एक रहस्य बन गया है। जैसे-

“ प्रिय विरन्तन है सजनि , चाण चाण नवीन सुहागिनी में । ” १

में सर्वव्यापी शुद्ध, प्रबुद्ध , अक्षर अविनाशी ब्रह्म की सुहागिनी आत्मा में प्रियतमा का स्वामिमान इन पंक्तियों में साकार हो उठा है -

“ सजनि मधुर निजत्व दे,  
कैसे मिला अभिमानिनी में । ”

प्रयत्नी- प्रियतम की स्कन्धा में अभिनय व्यर्थ हो जाता है, जीव और ब्रह्म का अद्वैत भाव इन पंक्तियों में दर्शनीय है -

“ तुम हो विष्णु के विम्ब और मैं सुग्धा रश्मि अजान । ”  
जिसे सींच लाति अस्थिर कर, कौतूहल के बाण ॥ ” २

“ बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।

नींद थी मेरी अबल निस्पन्द कण कण में ,

प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,

प्रलय में मेरा फटा फड़चिह्न जीवन में,

शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में ॥ १

अद्वैत की इस स्थिति में लघुतम जीवन के असीम का सुन्दर मन्दिर बन जाता है, स्वार्थ नित प्रति प्रियतम का अभिनन्दन करती रहती हैं। लोचनों में आये जलकण पाद प्रक्षालन के लिए उमड़ते हैं, पुलकित रोमावली अदात तथा मधुर पीढ़ी ही चन्दन बनकर समर्पित हो रहे हों तो, पूजा, अर्चना के बाह्याचार की आवश्यकता ही नहीं रहती। कभी जिसके प्रति जिज्ञासा जागी थी -

“ कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कसक में नित

मधुरता भरता अलङ्घित ?

कौन प्यास लोचनों में

धुमड़ धिर भरता अपरिचित ? १

स्वर्ण स्वप्नों का वितेरा

नींद के सूने निलय में ।

कौन तुम मेरे हृदय में ? २

प्रश्न बार बार उठता रहा, उसी अव्यक्त के साथ अद्वैत सम्बन्ध की स्थापना करने के साथ कवयित्री ने आत्मा का विस्तार भी सम्पूर्ण जगत् में कर दिया ।

“ नींद थी मेरी अबल निस्पन्द कण कण में ” आत्मा के चिरन्तन स्वरूप

की अमिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार ब्रह्म के निर्गुण निराकार, सगुण निराकार तथा सगुण साकार के विविध रूपों की मधुरिमा, आत्मा की चिरन्तनता तथा संसार की क्षाण भंगुरता, निश्चुरता, परिवर्तनशीलता आदि का जो वर्णन हुआ है, वह उनकी दार्शनिक चेतना को पूर्णतया प्रतिपादित करता है। प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन करने की अपेक्षा कवयित्री ने उसे अलंकरण सज्जा के निमित्त चित्रित किया है। इस प्रकार दार्शनिक रहस्यवाद की भावात्मक अमिव्यक्ति में महादेवी जी के गीत अपने में पूर्ण तथा मार्मिक हैं।

प्रेमात्मक रहस्यवादी गीतों के अन्तर्गत महादेवी वर्मा के वे गीत आते हैं जिनमें ब्रह्म के प्रियतम रूप को लेकर, आत्मा रूपी प्रिय-तमा के संयोग वियोग के विविध रूपों को चित्रित किया गया है। यह तो सर्व-मान्य मत है कि अनन्त ब्रह्म की उपासिका ने उपास्य को प्रियतम रूप में देखा है। प्रिय, सुन्दर, चिर-सुन्दर, निर्मम, निश्चुर, निर्माही, अमिमानि तथा करुणेश, करुणामय आदि विभिन्न सम्बन्धों से प्रियतम को पुकारने वाली प्रेमिका कभी कभी तू, तुम, तेरा आदि रूप से भी उसे बुला लेती है। इन सबका कारण है चिरन्त फिर भी नित नवीन प्रेम। महादेवी जी का सम्पूर्ण प्रेम स्कपक्षीय है। उनके समस्त गीतों में उन्हीं की विरहजन्य पीड़ा, तीव्र हलचल, तीखी व्याकुलता, गहरी मिलनोत्कण्ठा और चिर-विरह में लीन रहने की अर्पण आकांक्षा व्यक्त हुई है।

सम्पूर्ण प्रकृति अपने सौन्दर्य में मग्न थी, राकेश चांदनी में निशा की अलकें खोलता था, मधुमास कलियों से अठखेलियां कर रहा था, चारों ओर स्वप्न सौन्दर्ययुक्त संसार और उसी में करुणा भरी आँखें, मधुर मुस्कान प्रियतमा के मन को पीड़ा प्रदान कर देती है। आँखों पर ब्रीझों का पहरा था। तभी किसी ने पीड़ा का साम्राज्य दे दिया तो जीवन अपनी आकुलता को संजो कर केवल प्रतीक्षा में ही लीन हो गया। युग बीत गया किन्तु

स्मृति उस घड़ी को विस्मृत न कर सकी। विरह की रागिनी जीवन का सर्वस्व बन कर रह गई। यहाँ पर कवयित्री ने शृंगार रस के क्रमिक विकास में विभिन्न काम दशाओं का भी सहज चित्रण कर दिया है। यथा-

“ उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह मिचुका जीवन,  
उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन ॥ ”

स्मरण सम्बन्धी रचनाओं में उस प्रियतम से मिलन स्थलों तथा उसके दिव्य सन्देशों की स्मृति आती है। उच्छ्वासों की लाया में मधु दिनों की स्मृतियाँ जागृत हो जाती हैं। आश्चर्य यही है कि “ क्यों वह प्रिय आता पार नहीं, शशि के दर्पण में देख देख, मैं सुलफाये तिमिर केश ” अथवा-

“ कैसे सदेश प्रिय पहुँचाती ।  
दुग -जल की सित मसि है अचाय,  
मसिप्याली, फरते तारक-द्वय ,  
फल फल के उड़ते पृष्ठों पर ,  
सुधि से लिख स्वासों के अक्षर ॥ ” २

विरहाकुल आत्मा विरह में चिरन्तन बन जाना चाहती है। यदि वह एक बार आ जाता तो जीवन में बसन्त आ जाता, चिर-संचित विराम लुट जाता, आखिरी अफा सर्वस्व न्यूनीकरण कर देती।

प्राणों के अन्तिम पाहुन के लिए सब कुछ विसर्जन करने को आकुल यदा कदा इतनी उदास हो जाती है कि अश्रुमय कोमल जगत् में एक परदेसिनी मात्र रह जाती है। आत्मनिवेदन, समर्पण के साथ साथ उपालम्भ की अभिव्यञ्जना भी अत्यन्त सार्थक तथा मार्मिक हुई है। यथा-

“ मृत्यु के उर में समा क्या पायेंगे अब प्राप्त भरे ?  
 मैं मिटूंगी क्या अमर हो जायेंगे उपहार भरे । ”

अथवा

“ कमलदल पर किरण- अंकित  
 चित्र हूँ मैं क्या चित्ते ?  
 बादलों की प्यालियाँ भर  
 चांदनी के सार से ,  
 तू लिका कर इन्द्रधनु  
 तुमने रंगा उर प्यार से ॥ ” १

आदि में उसालम्प की भक्तक मिलती है। इसके अतिरिक्त उन्माद, व्याधि, जड़ता और मूर्च्छा से सम्बन्धित भी अनेक गीतों की रचना कवयित्री ने की है। विरह की आत्यन्तिक स्थिति मृत्यु के चित्र तो नहीं होते किन्तु चिरन्तन विरह दर्शन की भक्तक इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

“ शून्य से टकरा कर सुकुमार,  
 करेगी पीड़ा हाहाकार,  
 बिसर कर कन कन में हो व्याप्त  
 भय बन का लेगी संसार ॥ ”  
 ०                      ०  
 विश्व होगा पीड़ा का राग,  
 निराशा जब होगी वरदान,  
 साथ लेकर मुझकाई साथ,  
 बिसर जायेंगे प्यासे प्राण ॥ ” २

१- यामा- महादेवी पृ० १७३

२-                      , ,                      पृ० २८

महादेवी वमाँ ने प्रकृति के माध्यम से जहाँ रहस्यवादी भावनार व्यक्त की हैं, उन्हें प्रकृतिमूलक रहस्यवादी गीत कह सकते हैं। शायवादी काव्य के अनुसार प्रकृति का कण कण मानवीय भाव-नाओं के केवल प्रतिबिम्ब न होकर उस विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं। प्रकृति और मानव की विभिन्नता तथा परिवर्तनशीलता में तारतम्य लोजो हुए, असीम चेतन तथा असीम हृदय को परस्पर निकट से देखते हुए कवयित्री द्वारा उन सब में एक अलौकिक व्यक्तित्व जाग उठा है। कवयित्री स्व और तो प्रभात रजनी, संध्या, आकाश, निर्भर आदि में असीम सा आकर्षण प्राप्त करती हैं, तो दूसरी ओर उस असीम के कण कण में अपना अस्तित्व भी व्याप्त देखती हैं। जैसे-

“ फैलते हैं सान्ध्य नम में भाव ही मेरे रंगीले

तिमिर की दीपावली है, रोम मेरे पुलक गीत ॥ ”

“ मेघ सी घिर कर चली है ”, “ मैं नीर भरी दुःख की बदली ”, “ मैं बनी मधुमास वाली ” अथवा “ प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन ” आदि गीतों में अपने व्यक्तित्व को भी असीम में फैलते देखा गया है।

महादेवी वमाँ के गीत अत्यधिक भाव प्रवण हैं। उन्होंने प्रेम के जिस स्वरूप को लिया है, नारीत्व की सहज स्वाभाविक कोमलता पाकर उसकी मार्मिकता में वृद्धि होगई है। कवयित्री का विश्वास है कि सुख का सागर हमें अपने तक सीमित कर देता है किन्तु दुःख का एक बूंद आसू हमें विश्व जीवन तक व्याप्त कर देता है। यही कारण है कि महादेवी जी के गीत किसी के मन को आकृष्ट करने में पूर्णतया सफल हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रचलित लोक गीतों की वन्य गति लय में अमूल्य काव्य सामग्री भरकर कवयित्री ने सही बोली कविता में गीत के माध्यम को अमर कर दिया है। गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई है वैसी और किसी को नहीं।

द्वितीय अध्याय : "यामा" का शिल्प विधान

### यामा का शिल्प- विधान

आलम्बन और आश्रय के सम्बन्ध की रागात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है। रागात्मक सम्बन्ध के तीन भाग विद्ये जाते हैं, उन्हें तीन मंजिलें, सोपान या यात्रा- सण्ड भी कहा जा सकता है। यथा-

- १- आलम्बन के स्वरूप की जिज्ञासा
- २- सम्बन्ध बोध
- ३- सम्बन्धानुभूति ।

चित्र-दर्शन, स्वप्न दर्शन , प्रत्यक्षा दर्शन, गुण श्रवण आदि से आश्रय के हृदय में आलम्बन के स्वरूप की जिज्ञासा होती है। यही उसे प्रेरित करती है कि आलम्बन का सान्निध्य उसे प्राप्त हो । सान्निध्य ( यथार्थ या काल्पनिक ) प्राप्त कर स्वरूप- बोध होता है। बिना स्वरूप- बोध हुए सम्बन्ध स्थापना की कामना न उगती है और न फलपत्ती है । कामना जब गहन राग या वासना का रूप ले लेती है, तब सम्बन्धानुभूति बन जाती है।

आलम्बनगत उष्करणाँ से आकर्षित होकर ही आश्रय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। ये उष्करणाँ हैं शारीरिक रूप- सुखमा , परिधान, प्रसाधन, कर्म- गुण स्वभाव, वैष्टार आदि । दूसरे उष्करणाँ हैं वाह्य परिवेश आदि । काव्य में इन्हें ही उद्दीप्त कहा जाता है। सम्बन्ध बोध या सम्बन्ध कल्पना हो जाने पर सम्बन्धानुभूति होने लगती है। ये उष्करणाँ उस रागात्मक अनुभूति को और भी तीव्र करते हैं। इन उष्करणाँ को दो भागों में रखा जा सकता है। प्राकृतिक और स्वनिर्मित । यही विभावन व्यापार कहलाता है । आलम्बन- आश्रय का सम्बन्ध- बोध, सम्बन्ध कल्पना, सम्बन्धानुभूति, जिज्ञासा



को भावना व्यापाक कहते हैं। दोनों के विम्बात्मक चित्रण को समिव्यंजना शिरूप या कलापदा ।

महादेवी जी का प्रिय परोक्ष भी है, प्रत्यक्ष भी। अतीन्द्रिय अगोचर होते हुए भी इन्द्रियगम्य है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और गोचरा-गोचर ब्रह्माण्ड-विस्तार के अणु-अणु में व्यापक विराट् भी। उसका स्वरूप बहुत कुछ कबीर के दैतादैत विलक्षण गुणवाले कन्त के समान है। रसि का जाल-मनहोने के कारण वह निर्गुण निर्विशेष नहीं रह जाता। उसे हरीरौरूप में प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। उसके प्रति जिज्ञासा का उदय होगा, दृष्टि-विस्तार के दर्पण में उसके मानस-प्रैशी वसाधारण, वसामान्य और अनुपीय सौन्दर्य के प्रति विम्व को देखकर, उसके सौन्दर-सर-वेषन की प्रतिक्रिया को अनुभव करेंगे। यथा-

“ चुभते ही तेरा अरुण वान ।

बहते कन कन से फूट फूट

मधु के निर्झर से सजल गान ॥

इन कनकरश्मियों में अथाह,

लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग,

बुद्बुद् से बह चले अपार,

उसमें विहगों के मधुर राग,

कनली प्रणाल का मृदुल बूल,

जो धातिज-रेख धी बूझ-स्तान ॥ १

वह सुकुमार प्रभात की सुषमा-स्वर्णमि प्रथम भलक का सख-चित्रण है।

काव्य शिल्पी ने प्रथम अरुण सूर्य- रश्मि को बाण के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है। यदि किसी रस सम्पन्न पदार्थ ( रसमयी अंगूर आदि ) पर शरा-घात किया जाये, तो उसमें से रस फूट पड़ेगा। उस रस- पदार्थ की राशि को वेध दिया जाय तो निश्चय ही रस की धाराएँ बह निकलेंगी। सृष्टि के कण-कण में लबालब रस भरा है, किरण बाण के लगते ही वह फूट कर बह निकलता है। रश्मि बाण सिद्ध होकर कण कण से वह नहीं वह निकलता, जिसका जीम से आस्वादन किया जाय, बल्कि मधु के फारनों के गान वह निकलते हैं। प्रथम किरण से धरती पर आते ही प्रमद गुंजारने लगते हैं, विहग कलख बर उठते हैं, झुझारों में कर्जना- गान गुंज उठते हैं- लगता है, कण- कण से गीत फुलरित हो रहे हैं। चारों ओर संगीत सुनकर करुणा की जा सकती है कि कण- कण में संगीत भरा था - यहाँ परिणाम से तथ्य का अनुसंधान हुआ। ' सजल ' विशेषण से प्रगल्भशीलता और अभिसिंचनशीलता दो गुणों को गान में स्थापित किया गया है। गान में जागे बढ़ने, प्रसारित होने और मानस को सुवा देने के गुण होते हैं। एक बात और, संघर्ष या टूटने से शब्द उत्पन्न होता है। किरणों के आघात से कण टूटते हैं, तो उनमें शब्द विस्फोट- सिद्धान्त के अनुसार उत्पन्न होगा ही।

किरणों के उदय होने से पूर्ण अन्धकार की तरहसी जमी रहती है। सम्पूर्ण धरातल पर सुप्त मनुष्य के समान अन्ध छिया हीन जड़ वत् तम- सिन्धु फैला दीखता है। सब है, किरणों तारों के रूप में ऊपर पर पृथक्- पृथक् ही प्रकाश- तारों या धारों के रूप में। करुणा की धाराओं में ऐसा ही दृश्य उतरता है कि अन्धकार के आवरण पर किरणों अलग अलग पड़ रही हैं।

तब किलमिलाती किरणों के बीच- बीच में तम - कालिमा काँफ़ी सी मालूम होगी। रश्मि- आलोकित भाग ऊपर उठा हुआ और अनालोकित कला भाग नीचे दबा हुआ मालूम होगा। तरंगित समुद्र

में ऐसा ही दृश्य देखा जाता है। लहरें ऊपर उठीं हुईं और गेठा जल नीचे रहता है।  
 क्रियाशीलता- कम्पन ही जागरण है, निस्तरंगता, जड़ता की निधि।  
 विरणों के पड़ने से तिमिर- समुद्र तरंगायित माहूम होता है। ऊष्मा के उदय-  
 काल में पूर्ण प्रकाश नहीं होता, बालोक तिमिर मिले मिले से रहते हैं। ऐसी ही  
 समय विहग बहबहारी गाते हैं। विहग- स्वर से ही वर्धनिद्रित प्राणियों तिमिर  
 बालोक- मिश्रित समय ( पफली फटने के समय ) का आभास पाते हैं - छीक  
 इसी प्रकार जैसे बरते बुलबुलों से समुद्र के तरंगायित होने का। चित्तिज तम-  
 सिन्धु के तट हैं, जो फ़ातल (भूग ) के समान मीनियों वरुण आभा से रंग जाते  
 हैं। मृगा चमकीला लाल नहीं, मद्धिम ~~परमपरम~~ लाल होता है।  
 दोनों में यथार्थ धर्म साम्य स्थापित हुआ है। सभी उपमाओं का सुनाव कमाल  
 का है। यहां इतना और कह देना आवश्यक है कि चित्र वस्तुतः कार्त्तिक ऊष्मा  
 के उदय का है। सुबह पांच बजे यह दृश्य किसी विश्रुत समतल मैदान में, जब  
 सूर्य चित्तिज रेखा से किसलयों का पर्दा उठाकर भाग रहा हो, प्रत्यक्ष देखा  
 जा सकता है।

प्रकृति के करीम विस्तार में वह कर्तव्यिष्ट सुखमा  
का लवालव ज्वार उमड़ता देखती हैं। उत्तेजक वातावरण में साधिका के हृदय  
में रति भाव बाहुल हो उठता है। उन्माद की दशा में विरहिणी को फन लिखना  
चाहती है। यथा-

कैसा सदैव प्रिय पहँचाती ।

दृग्- जल की सित मणि हैं लफाय,

मसिष्याली, फरते तारक-द्वय,

पल पल के उछले पृष्ठों पर,

सूचि स लिख श्वासों के अक्षार-

मैं अपने ही वस्त्रधन में

लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती ॥ १

बाँसों में अजब बहुत जल की स्याही भरी है, लेकिन वह सफेद है, सफेद कागज पर सफेद स्याही से लिखा जाय, तो न लेखक ही पढ़ सकेगा, न पाठक । साथ ही फल-पृष्ठ लगातार बहुत बरसने से इतने भीग जायेंगे कि सब लिखा लिखाया फुट जायेगा । विरह दशा की बतावनी में बाँसों की गति बहुत तीव्र हो जाती है। हर साँस भावना-रचना में तीव्रता से लीन है, भावावेग में लिखना बहुत है। शक नहीं पृष्ठों का भी अनन्त भण्डार लेखिका के पास है, लेकिन छाणों की गति इतनी तेज है कि प्रत्येक साँस का उद्बर्ग वीकित होने से पहले ही अनन्त फल-पृष्ठ तेजी से उड़ जाते हैं । समय की गति-तीव्रता अमाप्य है तब सन्देह सही रूप में कैसे लिखा जाय ? असम्भव । प्रत्येक फल-पृष्ठ अमाप्य तीव्रता से उसी की ओर उड़ जा रहा है, तो कुछ का कुछ, जो भी लिखा जायेगा, उसके पास पहुँच जायेगा । खण्डित, अखण्डित, अस्पष्ट, बहुत-भीग, विरह-बताव, वेदना-ताप, भुलने साँस प्रत्येक छाण पर वीकित होगी । यही अक्षर विरहणी के हृदय को सही अभिव्यक्ति देगे । उन्माद, बेसुधी, इष्टपटाहट, बेवसी, अवकाशहीन भावावेग की दशा में भावना की सही रचना कभी हो ही नहीं सकती । फल-लेखन दशा का रूपक उपस्थित करने के लिए स्याही, दवात, लेखनी, कागज, अक्षर के लिए जो उपमान उपस्थित किये गये हैं, हिन्दी में वे अत्यन्त हैं। रहस्यवादी अभिव्यक्ति का, इस सन्दर्भ में, यह आदर्श नमूना है।

‘यामा’ में हफ्तों का समुद्र भण्डार भरा है ।  
विरह साधिका होने के कारण विरह सम्बन्धी रूपक अधिक संख्या में हैं- और  
भावोत्कर्षकारी भी हैं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित पद द्रष्टव्य हैं :

‘विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात ।  
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,  
अहु चुनता दिवस इसका अहु गिनती रात ।

जीवन विरह का जलजात ॥ १

शलम में शापमय वर हूँ ।

किसी का दीप निष्ठुर हूँ ॥

ताज है जलती शिखा

चिनगारियाँ शृंगारमाला,

ज्वाल अदाय कोण सी

अंगार मरी रंगशाला ॥ १

००

००

००

प्रिय । सान्ध्य गगन

मेरा जीवन ।

यह क्षितिज बना धुंधला विराग,

नव अरुण वरुण मेरा सुहाग ,

हाया सी काया वीतराग,

सुधमीनि स्वप्न रंगिल घन ॥ २

००

००

००

मैं नीरमरी दुख की बदली ।

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,

क्रन्दन में जाह्नव विश्व हँसा ,

नयनों में दीप्ता से जलते

फलकों में निर्भरिणी मचली ॥ ३

००

००

००

हृन् उत्साह तरंगों पर सह-

१- यामा - महादेवी पृ० २०३

२- यामा- महादेवी पृ० २१८

३- यामा - महादेवी पृ० २२७

फरफटा के बाधात,  
जलना ही रहस्य है बुझना-  
है नैसर्गिक बात ॥ १

कुहरे सा धुंधला भविष्य है  
है अतीत तम घोर ,  
कौत बत देगा जाता यह  
किस असीम की ओर ॥ २

00

00

तेरे वसीम आगन की  
देखू जगमग दीवाली ,  
या इस निर्जन कोने के  
हुकते दीप्ता को देखू ॥ ३

ये हैं सांख्यरूपक । निरंख्यरूपक तो प्रत्येक फल में मिल जायेंगे । जहाँ प्रकृति का व्यक्तिकरण करने के लिए मानव अवयवों को गिनाकर, उसका शरीरी रूप गठन करने के लिए या स्वयं को प्रकृति पर आरोपित कर उसका शरीरी रूप उपस्थित करने के लिए रूपक- विधान किया गया है, वहाँ महादेवी जी उत्तनी ही असफल रही हैं, जितनी वे भावप्रधान , अनुभाव प्रधान, वात्स्य निवेदन- प्रधान और दृश्य प्रधान रूपकों में सफल हैं । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित रचनाएँ द्रष्टव्य हैं -

धीरे धीरे उतर क्षितिज से  
जा वसन्त- रजनी ।  
तारकमय नव वैष्णविन्धन,

- 
- १- यामा- महादेवी पृ० ७८  
२- ,, ,, पृ० ७८  
३- ,, ,, पृ० १००

शिश- फूल कर शशि का नूतन  
 रश्मि-चलय सित धन- अवगुण्ठन,  
 मुक्तावलि वामिराम बिश्व दे  
 चितवन से अपनी ।  
 पुलकती वा वसन्त- रजनी ॥ १

००

००

० जी विभावरी ।  
 चांदनी का अंगराग ,  
 मांग में सजा परगा,  
 रश्मि- तार बांध मृदुल  
 बिहुर- मार री ।  
 जी विभावरी ॥ २

००

००

० शून्य मन्दिर में बूंगी आज में प्रतिमा तुम्हारी ।  
 अर्चना हो धूल मोल ,  
 चार दृग- जल अव्यय हो ले ,  
 आज करुणा-स्नात उजला ,  
 दुःख ही मेरा पुजारी ॥ ३

००

००

०० मैं बनी मधुमास वाली ।  
 आज मधुर विषाद की धिर करुण आई यामिनी ।

- 
- १- यामा- महादेवी पृ० १३०  
 २- ,, पृ० १६६  
 ३- ,, पृ० २१२

बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुत्त की चादनी ।।

उमड़ बाँहें री दृगों में

सजनि कालिन्दी निराली ।। १

इन रूपकों में कहीं तो प्रेम साम्य, रूप- साम्य, स्थिति साम्य का अभाव है, कहीं शरीरी रूप साम्यता का अभाव । इनमें से कुछ की समीक्षा प्रतीक विवेचन के अन्तर्गत करेंगे ।

काव्य और व्यावहारिक जीवन में उपमा का प्रयोग सर्वाधिक होता है। इसका प्रयोग जितना सरल है, उतना ही कठिन भी । कठिन इसलिए कि एक ही उपमान से व्याप्त अर्थ- व्यापार होते हैं । ऐसा उपमान तलाश करना जो रूपक, प्रतीक या अन्योक्ति के समान व्याप्त अर्थ का अभिव्यञ्जक हो, अत्यन्त फैली, विस्तारदर्शी, प्रबुद्ध प्रतिभा की ही सामर्थ्य है। सर्वोत्कर्षकारी उपमान कहीं कहलायगा, वाक्यार, रूप , गुण, भाव , क्रिया, प्रभाव की दृष्टि से कृति, वर्तमान और भविष्य को भी अपने में समा-विष्ट किए हैं । यहाँ पर कुछ उपमाएँ द्रष्टव्य हैं -

“मौम सा मन घुल चुका अब  
दीप सा तन जल चुका है ।।” २

000

“नव मेघों को रोता था  
जब चालक का बालक मन ।  
मेरे मन बालशिली में  
संगीत मधुर बन जाता ।।” ३

१- यामा - महादेवी पृ० १५८

२- दीपशिखा गीत संख्या २३

३- यामा- महादेवी - पृ० ८४



चक्ति-से विस्मित से दृग बाल ।  
 अकारण यह शैशव सा हास ।  
 तरंगों से द्रुत फल सुकुमार ।  
 सुदुर- से तेरे प्राण ॥ १

००

००

विहग शावक से जिसदिन मूक  
 फल थे स्वप्ननीद में प्राण ॥ २

मोम तनिक से ताप से पिघल जाता है । विहग- सन्ताप से मन पिघल गया है । मोम का कोई फलार्थ ( बत्ती ) जब पिघलता है, तब पिघले मोम की गोल- गोल बूँदें रफटती दीक्षी हैं । सारा मोम पिघल जाने पर बूँदें पिघले हुए मोम में विलीन हो जाती हैं । सारा मोम द्रवित तरल स्निग्ध फलार्थ बन जाता है। ~~अतएव~~ मन भी ऐसा द्रवणशील, तरल फलार्थ बन गया है । वह सन्ताप- द्रवित आँसू भी फिसलते नहीं आते । ' मोम- सा मन धुल चुका ' में व्यर्जना से सन्ताप के आधिक्य, मन की द्रवणशीलता, प्रिय- साधना में सम्पूर्ण विनाश- का सबके चित्र में प्रिय की निष्पूरता, प्रेयसी की स्वान्त- निष्ठा और प्रिय के प्रति करुणा का अनुरोध समझाया है। दीप के सम्बन्ध में भी यही समझ लें ।

" बालक का बालक मन , मन बालशिली ,  
 ' दृगबाल ' , ' शैशव सा हास ' , विहग शावक से प्राण ' में बालक और शैशव को उपमान प्रयुक्त हुए हैं। बालक और बालक की छठ सर्वविधित है। बालक जिस बात पर लड़ जाय, मनवाकर ही मानता है । बालक भी स्वाति जल पीकर ही चैन लेता है। बालक अवोध अवोध होता है। साधिका का अवोध मन-मोर भी

१- यामा- महादेवी पृ० १२६

२- ,, ,, पृ० १०५

बालम्बिन श्यामघन को देखकर गा उठता है । बालम्बिन के सुषमा- प्रभाव, शीत-  
लता- दान, वायव्य के मन की मुग्धता की व्यंजा ' बालशिली ' में है। बालक  
भौले होते हैं । धोड़ी-सी विलक्षणता, असाधारणता, असामान्यता पर  
विस्मित- चकित हो जाते हैं, यहाँ बालक के स्वभाव - भौलेपन , चपलता और  
मुग्धता को जालों में स्थापित किया गया है। विहग शायक से भी प्राणों की  
अबोधवस्था, शैशव, निष्क्रिय, परिधिबद्ध अवस्था की व्यंजना की गई है ।  
शैशव से शिशु के स्वभाव- निमलता, निष्कपटता, स्वच्छन्दता , मरुता, सुकु-  
मारता , क्षीणता , लघुता का वर्ण लिया गया है। इन उपमानों में फलार्थ से  
गुण- स्वभाव, गुण स्वभाव से क्रिया, साकार से निराकार, निराकार से साकार,  
असाम्य से साम्य की व्यंजना पूरी सफलता से चित्रित मिलती है। सारा ही ध्यान  
देते की बात यह भी है कि एक शब्द ( बालक ) कितने विभिन्न वर्णों का बोधक  
है ।

महादेवी जी की अभिव्यंजना में भाव विशेष<sup>१</sup>  
या स्थिति विशेष की सूक्ष्मता<sup>२</sup>, भिन्न गुण स्थापना<sup>३</sup>, विपरीत<sup>४</sup> और  
विरोधी स्वभाव समावेश , विपरीत परिणाम, विपरीत क्रिया , उक्ति-

१- प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में जाता चुपचाप ।

मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी फड़चाप ॥ यामा पृ० १४७

२- पीछा मेरे मानस से भीगे पट-सी लिपटी है ॥

- यामा पृ० २६

३- लय बनी मृदु वर्तिका, हर स्वर जला बन लौ सजीली ॥

- दीपशिला गीत ५

४- ज्वाल का मोती लभाली सोम की यह सीप ॥ दीपशिला , गीत ४

५- प्यास वह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष में ॥

- दीपशिला गीत १७

६- चार हुए, दुःख में मधु भरते ॥ दीपशिला , गीत १०

वक्रता, लक्षणा<sup>१</sup>, व्यंजना आदि सभी प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं।

अद्वैतवाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही रहस्य-वाद है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा वक्र है, परमात्मा वही माया के व्यवधान या विभाजक कर्मों के द्वारा परमात्मा से आत्मा अलग हो गई है। ज्ञान या प्रेमासाधना से आत्मा फिर परमात्मा में मिल जाती है। दोनों का सम्बन्ध समुद्र और लहर के समान है<sup>२</sup>। परमात्मा और आत्मा की स्वरूपा को कवयित्री ने अनेक उपमानों द्वारा व्यक्त किया है। इसमें सर्वाधिक सूर्य और दीपक को लिया गया है। परमात्मा को विधु, जलराजि, कतुराज, निद्रा, ज्योति-विस्तार प्रकाश, ज्वाला, बादल और आत्मा को रश्मि, उर्मि, मधु<sup>३</sup> स्पर्श, तारक, रश्मि, उत्ताप, बिजली के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। सूर्य और दीपक की सम्बन्ध कल्पना को छोड़कर शेष उपमेय - उपमानों में कोई नवीनता नहीं, पुराने रहस्यवादी और भक्तों ने भी प्रायः भगवान् और भक्त, साध्य-साधक और प्रियतम- प्रेयसी का असंख्य सम्बन्ध इन्हीं प्रतीकों के द्वारा दिखाया है।

१- जीवन पावस रात बनाने सुधि कन आया कौन ।

आज क्यों तेरी वीणा मीन ? - यामा पृ० १३३

२- सिन्धु को क्या परिचय है देव, विगड़ते बनते बीच विलास ?

छाड़ हैं मेरे दुबुद्ध प्राण , तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश ॥ यामा पृ० ६४

३- मधुर मधुर मेरे दीपक जल ॥ यामा पृ० १४५

४- फलकों से फलकों पर उड़कर , तितली सी अस्तान,

निद्रित जग पर तुन देती जो, लय का एक वितान ॥ यामा पृ० १०३

तुम असीम विस्तार ज्योति के में तारक बुकुमार,

तेरी रत्नारूपहीनता , है जिसमें साकार ॥ यामा पृ० १०३

मैं तुमसे हूँ स्थ, एक हूँ, जैसे रश्मि प्रकाश ।

मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों , घन से तडित्-विलास ॥

- यामा पृ० १०४

अप्रस्तुत विधान में सर्वाधिक भावाभिव्यक्ति है-  
 प्रतीक । अर्थ- सम्पन्नता और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी समता की जा  
 सकती है, तो अन्योक्ति से । प्रतीक में अर्थ इसी प्रकार रखा है, जैसे -  
 बीज में । वृक्षा की टहनियाँ, पत्ते फूल और फल आदि । प्रतीक भी धर्म  
 साम्य को अभिव्यक्ति देने में जितना अधिक समर्थ होगा, उतना ही वह काव्य  
 के लिए उपयोगी होगा । प्रतीक ( प्रति- छक ) का काँ है, और झुका  
 हुआ । अभिव्यक्ति की सुवोधता- दुर्बोधता का व्यापार रहकर प्रतीक वर्णना  
 की जाती है । बालम्बन और बाधय साकार होने पर भावन और विभावन  
 व्यापार को अभिव्यक्ति करने के लिए प्रतीक विधान की आवश्यकता कम पड़ती  
 है । बालम्बन सूक्ष्म परोक्ष, निराकार होने पर अनुभूति भी रहस्यमयी बन  
 जाता है, तब तब प्रतीक एक अनिवार्य उपकरण हो जाता है। भावन और  
 विभावन दोनों व्यापार मुख्य- रहस्यमय बन जाने पर उन्हें प्रतीकों द्वारा ही  
 प्रकट किया जाता है। यही कारण है, निर्गुण माधुर्य भक्ति में जो प्रतीक  
 विधान मिलता है, वह सगुण भक्ति या लौकिक काव्य में नहीं ।

महादेवी जी की काव्य साधना का बालम्बन  
 है परोक्ष या सूक्ष्म । उनकी साधना रहस्यात्मक है, तब रहस्यमयी अनुभूति  
 या व्यापार को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रतीक पद्धति का व्यापार रखा ही  
 पड़ेगा । महादेवी जी के प्रतीक स्पष्ट होते हैं , अभिव्यक्ति की उंगली के नहीं  
 होकर । साथ ही वह एक प्रतीक प्रस्तुत करके उसकी सभी तरफों का उल्लेख कर  
 सांगरूपक भी खड़ा कर देती हैं। इसलिए उनमें दुर्बोधता नहीं रहती है।

प्रतीक रूप में महादेवी जी ने दीपक का सबसे  
 अधिक प्रयोग किया है। दीपक अपने ही हृदय के अणुगुणों में तिल तिल  
 जल कर राख होता जाता है। तो भी प्रतीक्षा- प्रकाश को अपने अणुगुणों में प्रकाश  
 से अभिव्यक्ति करता रहता है। सघन अन्धकार से रुढ़ व्यक्ति और कुहाने के  
 समान धुंधला भविष्य । पीछे लौटना अशक्य और आगे बढ़ने में प्रकाश-परीक्षा,  
 तो भी उत्ताल तरंगों में तैरता , आधियों के व्यापार सहता अतीत की ओर

व्यसर् है । ऐसे प्रपङ्क प्रमी से ही प्रेम की रीति सीखी जा सकती है :

“ चार होता जाता है गत ,  
वेदनाओं का होता वन्त ,  
किन्तु करते रहते हो मौन,  
प्रतीक्षा का बालीकित पथ,  
सिखा दो ना नेही रीति  
कनोहि और नेही दीप ॥ ” १

००

००

“ कुहरे- सा पुथला भविष्य है  
है कतीत तम घोर ।  
कौन क्या देगा जाता यह  
किस वसीम की ओर ॥ ” २

प्रारम्भ में दीपक का जो निरूपण हुआ है ,  
देखने में वह आत्मन्त्र सा लगता है, लेकिन वह है मुख्य रूप में प्रेरक, प्रकाश-  
दर्शक , प्रेम और साधना का वाक्य या गुरु । इसलिए वह उद्दीपन रूप में  
प्रस्तुत है । साधनाभिलाषी, जिज्ञासु बन कर कवयित्री उसी स्नेह की रीति  
सिखाने का अनुनय करती है - “ सिखा दो ना ” में एक प्रकार का स्नेह  
कनुरोध और जिज्ञासु का शिशु- सुलभ मोलापन है, जिसे व्यावहारिक बोहू  
भाषा में “ निहोरा ” कहा जाता है। अपने आत्मन्त्र का आभास पा जाने,  
उसके विरह की अनुमति करने, उसके प्रति अकम्पित विरन्तन प्रेम ही जाने पर  
साधिका स्वयं दीपक बन चुग चुग तक जलने और उसके बाध से मुक्त जाने की  
कामना करती है। यथा-

१- यामा- महादेवी पृ० ५३

२- ,, पृ० ७

दीप सी युग युग जलू  
पर वह सुभग इतना बता दे ।  
फूँक से उस की बुझू  
तब चार ही मेरा फा दे ॥ १

प्रेम साधना के एकान्त लोक में, विरह विषादजन के बीहड़ में, सन्नाटे के निर्जन में निष्ठा के शून्य निलय में, भाव योग के कष्ट में पहुँच कर साधिका का हृदय ( आत्मा ) चिरन्तन स्नेह पुंज दीपक बन जलने लगता है। प्रियतम के पथ को आँठों याम आलोकित करते रहने के लिए साधना का दीपक जलाती रहती है- न जाने कब जा जाय । सिहरते, पुलकते, मुस्कराते, मद-विह्वल हो भ्रमते, मोले- भाते दीपक को जलाती रहती हैं। उसे सम्झाती हैं-

“ सारे शीतल कोमल नूतन ,  
माण रहे तुझ से ज्वाला- बन ,  
विश्व- शलम सिर धुन कहता, मैं  
हाय न जल पाया तुझ में मिल ।  
हिर सिहर मेरे दीपक जल ।  
मेरी निश्चाराँ से दूततर ,  
सुभग न तू बुझने का भयकर ,  
मैं अंचल की ओट किये हूँ ,  
अपनी मृदु पलकों से चंचल ॥  
सहज सहज मेरे दीपक जल ।  
तम असीम तेरा प्रकाश चिर,  
खेलें नव खेल निरन्तर ,  
तम के अणु अणु में विभुत-सा  
अमिट चित्र अंकित करता चल ॥

सरल सरल मेरे दीपक जल ।

तू जल जल कितना होता जाय ,  
वह समीप जाता इलनामय ,  
मधुर मिलन में मिट जाना तू ,  
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल सिल ॥ १

साधिका की प्रेम साधना की विरह ज्वाला से  
जालीकित जिस दीपक से प्रेम विरह साधना की चितगारियाँ जड़ बेतन , नवीन,  
निर्वल साधक मांग रहे हैं, चिर धुन धुन , तड़प तड़प कर, बेताब होकर माया  
लिप्त प्राणी उस प्रेम की जाग में न जल पाने के कारण- वैसी विरह साधना  
न कर पाने के कारण फूटता कर रह जाता है, उस साधक दीपक का क्या कहना ।  
यह आश्वासन कि साधिका उसे बुझने न देगी- सबल संकल्प सबल निष्ठा ,  
वलण्ड वास्था के ज्वल से उसे ओट किस है साथ ही उसके जाय होने से ही इलना-  
मय उससे जा मिलेगा तब कौन सा दीपक है, जो हँसते हँसते न जलता रहे ? वागे  
बलकर साधिका स्वयं दीपक बन जाती है। यथा-

“ शलभ मैं शापमय वर हूँ  
किसी का दीपक निष्ठुर हूँ ।  
ताज है जलती शिखा  
चितगारियाँ शृंगार माला ,  
ज्वाल ज्वाय कोष- सी  
अंगार मेरी रंग शाला ,  
नाश में जीवित किसी की साथ सुन्दर हूँ । ” २

---

१- यामा - महादेवी पृ० १४५-१४६

२- ,, पृ० २१८

साधक आत्मा का पूर्ण स्वरूप जैसा दीपक के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त होता है, वैसा शलभ, चातक, चकोर, कमल, कुमुदिनी, मल्ली आदि से नहीं। रहस्यवादी काव्य में तो और भी नहीं। दीपक स्नेह ( तेल ) और साधक स्नेह ( प्रेम ) में अन्धरी रात ( विरह वेदना तिमिर आवृत ) मर जलता रहता है। दोनों ही जलकर अन्कार ( अज्ञान-माया ) को नष्ट कर पथ वालोक्ति करते रहते हैं। दीपक से दीपक जलता है और साधक अन्य साधकों में विरह चिंगारी जलाता है। दोनों ही तिल तिल जलकर अग्नी सूर्य और परमात्मा के निकट पहुँचते हैं। दीपक की ज्योति वफ़ी वही ज्योति के अनन्त सूर्य पिण्ड में और साधक की आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। दीपक लौ जलाए रहता है, साधक लौ लगाए रहता है। स्नेह, लौ और ज्वाला ने श्लेष द्वारा भी दीपक को साधक का सच्चा प्रतीक बना दिया है।

दीपक के बाद ध्यान जाता है रात पर। वसन्त<sup>१</sup> रजनी<sup>२</sup>, रूपसि<sup>३</sup>, मिलन<sup>४</sup> यामिनी<sup>५</sup>, विभावरी<sup>६</sup>, सुकोशिनी<sup>७</sup>, सपने जगाती वा, इन गीतों में रात को प्रतीक रूप में रखा गया है।

शुक्लामिसारिका मुग्धा वसन्तरजनी की शृंगार सज्जा देखिए-

तारकमय नव वैष्णी वन्धन  
शिशि पूल्ल कर शशि का नूतन  
रश्मि वलय सित घन क्वगुंठन  
मुक्ताहल अभिराम विहादे चितवन से वफ़ी ।

१- यामा पृ० १३०

२- ,, १४०-१४१

३- ,, १५४

४- ,, १६६

५- ,, २४४



मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि ,  
 अलिगुंजित फसलों की किंकिणि ,  
 मर फड गति में बलस तरंगिणि ,  
 तरल रजत की धार बहा दे हृस्मित से रजनी ।  
 पुलकित स्वप्नों की रोमावलि ,  
 कर में ही स्मृतियों की अंजलि ,  
 मलयानिल का चल दुबूल बलि ,  
 थिर लाया-सी श्याम विश्व को आ बमिसार बनी ,  
 सकुचती आ वसन्त रजनी ॥

ऊपर वसन्त रजनी का जो रमणीय रूप चित्रित हुआ है, उससे बमिसारिका का कोई भी स्वरूप हमारी आँखों में चित्रित नहीं होता । किरणों से बल्य, मीलों से समाविष्ट कमलों से किंकिणी, तरंगिणी से चरणा, स्वप्नों से रोमावली, स्मृतियों से अंजली का कोई बाजार सामने नहीं आता । न किरणों , और न कमल हाथों और कमर के चारों ओर लिपटे रहते हैं । जिन उपमानों की कल्पना रूंगार सज्जा के लिए की गई है, वे सब विस्तृत अनन्त भूखण्ड में बिखरे पड़े हैं। केवल वार्षिक धर्म साम्य के कारण वे उपमेय धर्म नहीं निभा सकते । वसन्त रजनी की नारी रूप कल्पना वैसी ही है। जैसे केशव की पावस रजनी की काली या फसल की शिव या पार्वती के रूप में की कल्पना । रजनी का वैयक्तिक करण तो किसी सीमा तक ग्राह्य हो सकता है पर सावयव रूप प्रस्तुत करना, कल्पना का बहुत अच्छा उपयोग नहीं कहा जा सकता ।

वीणा और तीर भी प्रतीक रूप में अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं । वीणा का प्रयोग कहीं कब वित्री के निजी जीवन, कहीं कृदय के अर्थ में किया है। 'जर्जर वीन लेकर बिली तारों को जोड़ कर, पीड़ा का भार लेकर अनन्त की ओर कैसे बाऊँ ? ' जब वह कहती है , तो उसी का

को प्रकट करती है, जिसकी प्रकट करने के लिए सूर ने 'पर्यंतरि' का प्रयोग किया। जीवन के विस्तृत तत्त्वों को उसी ने एकत्र किया, वही गान को कहता है। साधिका के प्राणों का तार तार गा उठता है।

वीणा द्वारा जीवन ( विश्व जीवन ) को भी व्यक्त किया गया है। समस्त सृष्टि को वीणा की रंजना दी नहीं है। वह जब कहती है, " इस जादूगरनी वीणा पर छाया भर गा ले दो गायक ", तब साधिका के शरीर हृदय और जगत् का अर्थ व्यक्त होता है। समस्त जगत्, सृष्टि या विशाल भू-मण्डल का अर्थ व्यंजित करने के लिए नीचे की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

" तन्द्रिल निशीथ में ले आयि  
गायक तुम अपनी अमर बीन ,  
प्राणों में भरने स्वर नवीन ।  
तममय तुषारमय कोन में  
छेड़ा तब दीप्क राग स्क ।  
प्राणों- प्राणों के मन्दिर में  
जल उठे बुके दीप्क अनक ।  
तेरे गीतों के फलों पर  
उड़ जल विश्व के स्वप्न दीन ॥ " ४

प्रलय की निस्तब्ध संताहीन वफ़ीली रात में नाद ब्रह्म का स्फोट हुआ। जड़ में जीवन का उदय हो गया। उसके दीप्क राग ( जेतना स्वर, नाद विस्फोट ) से अनक बुके दीप्क जल उठे- प्रलय निद्रा में सुप्त आत्मार जाग उठीं। स्पष्ट है, यहाँ नाद से सृष्टि के उदय का सिद्धान्त प्रतिपादित है। वीणा में स्वर है, भावहार है। स्वर सत्य है,

- 
- १- यामा- महादेवी पृ० ६३  
२- ,, पृ० ६५  
३- ,, पृ० १५२, १३३  
४- ,, पृ० २४०

भरकार कम्पन है । कम्पन ही क्रियाशीलता है, चेतना है, गति है । नाद भी गतिशील है। नाद अमर है । जीवन गतिशील है, अमर भी है- अनादि है, अनन्त है । इतिहास भी नहीं जानता , जीवन का आरम्भ कब हुआ ? इसीलिए वीणा को जीवन का प्रतीक मानना अत्यन्त उपयुक्त है।

प्रेम, विरह- वेदना, प्रेमानुभूति प्रेमबोध आदि को तीर के द्वारा अभिव्यंजित किया गया है। यथा-

“ तुमते ही तेरा अरुण वान ।  
बहते कन कन से फूट फूट ,  
मधु के निर्झर से सजल गान ॥ ” १

और भी देखिए-

“ किस सुधि वसन्त का सुमन तीर,  
कर गया मुग्ध मानस अधीर ॥ ” २

००

००

“ रात के उर में दिवस की चाह का सर हूँ ।  
शून्य मेरा जन्म था  
अवसान है मुझको सवेरा,  
प्राण वायुल के लिए  
संगी मिला-केवल अधीरा ॥ ” ३

तीर चुमने पर प्राणी पीड़ा से तड़फता है, विरह- वेदना ( प्रेम पीड़ा )

- १- यामा- महादेवी पृ० ६६  
२-       ,,       पृ० ७०  
३-       ,,       पृ० २१८

स भी प्रेमी छटपटाता है । परिणाम या प्रतिक्रिया की समानता के कारण दोनों समान हैं । कबीर ने भी प्रेम को शर या हथियार इसीलिए माना है । इस कल्पना का मूल है मदन के पुष्प बाण ।

दीपक के साथ ही दीपक राग का सम्बन्ध है । कहा जाता है, दीपक राग गाने पर बुझे दीपक जल उठते हैं। तब दीपक राग का लाक्षाणिक अर्थ होता है, स्नेह और ज्वाला । स्नेह का प्रेम, चिकनाई, भावना, राग, अनुराग और ज्वाला का अर्थ है प्रकाश । प्रकाश का अर्थ है ज्ञान, बोध चेतना आदि । दीपक राग को भी महादेवी जी ने ज्ञान, चेतना और राग भावना का प्रतीक माना है। उस परम चेतन परीक्षा सत्ता ने 'तममय, तुषारमय कोने में रखा जब दीपक राग एक' तब 'जल उठे बुझे दीपक' अनेक । दीपक राग का उल्लेख दीपशिखा में कई बार हुआ है। यथा-

“ जो न प्रिय पहचान पाती ?

किस लिए हर साँस में मैं सजल दीपक राग गाती ॥ २

साधिका घोरतम को विदीर्ण करने के लिए दीपक रागिनी गाती है । दीपक के अवयवों को उपमान बनाकर, राग के अंगों को उपमय बनाकर, वह बहुत अर्थों रूपक निर्माण करते में सफल हुई हैं-

“ सब बुझे दीपक जला लूँ

धिर रहा तम वाज दीपक

रागिनी जलाल ।

लय बनी मृदु वर्तिका,

हर स्वर जला बन लौ सजीली ॥

१- यामा- महादेवी पृ० २४०

२- दीपशिखा, गीत १६

“ फैलती आलोक-सी झंकार भरी स्नेह गीली ।

इस मरण के फल में मैं आप दीपाली मनाऊँ ॥ ”

दर्पण को माया व्यवधान<sup>१</sup> और शलम को माया लिप्त जीव<sup>२</sup> का प्रतीक माना गया है। एक आध जगह शलम को प्रेम भी कहा गया है।

संक्षेप में यहाँ महादेवी जी के नीति शिल्प की झंझरी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्राकृतिक परिवेश में वह अपने किसी भाव को उपस्थित करती हैं। प्रकृति अधिकतर उद्दीप्त-रूप में प्रस्तुत रहती है। यह प्राकृतिक परिवेश चित्रण कहीं कहीं इतना अधिक हो जाता है कि पाठक भ्रमवश इसे शुद्ध प्रकृति चित्रण ( आलम्बित रूप में ) समझ बैठता है। प्रकृति के अनेक चित्र उपस्थित करके अन्त में निज को उपस्थित करती हैं। यामा पृष्ठ १ पर चाँदनी रात, वसन्त और प्रभात को परिवेश ( उद्दीप्त रूप ) में उपस्थित करके , वह पंक्तियों के बाद प्रियतम के प्रथम परिचय की बात कही गई है। यामा पृष्ठ ६ पर चाँदनी रात, समुद्र की लहरों, मलयानिल, कलियों, सौरभ, क्षिप्ता चाँद और उगता प्रभात उपस्थित करके , बाँस पंक्तियों के बाद दो पंक्तियों में अपनी मुग्धता का उल्लेख किया है।

इसी प्रकार यामा पृष्ठ ४५ पर चाँदनी रात, प्रभात दीपक पर जलते शलम , पावस और उगते हुए चाँद के दृश्य उपस्थित करके, चौदह पंक्तियों के बाद अपने प्रियतम की प्रतीक्षा का उल्लेख करती हैं। यथा-

“ वे कहते हैं उनको मैं देखू,

अपनी फुलती में देखू

१- टूट गया वह दर्पण निर्मम ॥ यामा पृ० १६७

रहने दो रज का मजु मुकुर ॥ यामा पृ० १६६

२- यामा पृ० २१८, १३७, १७१

३- यामा पृ० १६३

यह कौन बता जायेगा

किसमें फुलती को देखू ?

मेरी पलकों पर रातें

बरसाकर मोती सारे ,

कहतीं क्या देस रहे हैं

वविराम तुम्हारे तारे ? " १

प्रकृति परिवेश को एक दौ जगह जीवन बाधाओं  
और माया व्यवधानों के रूप में जैसे-

" घोर तम छाया चारों घोर

घटायें घिर बाईं घन घोर ,

वेग मारुत का है प्रसिद्ध

हिले जाते हैं फलमूल ,

गरजता सागर बारम्बार

कौन पहुँचा देगा उस पार ? " २

दो चार बार प्रेयसी वमिसारिका के रूप में-

" मधुर मधुर मेरे दीप्क जल ।

युग युग प्रतिदिन प्रतिज्ञाण प्रसिप्त

प्रियतम का पथ बालोक्ति कर । " ३

कहीं कहीं समान भावानुभूति लीन प्रेयसी के रूप में-

" पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,

बाज नयन बातें क्यों भर भर ? " ४

१- यामा- महादेवी पृ० १६३

२- ,, पृ० १८

३- ,, पृ० १४५

४- ,, पृ० १३१



तृतीय अध्याय : 'यागा' का भाष्य पक्ष



## ‘ यामा ’ का भाषा पक्ष

छायावाद ने नये कविवन्द्यों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह सही बोली की सात्त्विक कठोरता नहीं सह सकता था । अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को अतिवर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप तौल और काट काटकर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया ।

छायावादी युग में सूक्ष्म एवं अमूर्त की अभिव्यक्ति के साथ सही अवश्य दुरुह हो गई, पर भाषा की शक्ति और सौन्दर्य में विकास हुआ । कहीं कहीं अस्वाभाविक रूपों के होते हुए भी सही बोली में बाधुर्य जैसा गुण इस काल में ही लाया । महादेवी वर्मा की भाषा इसका स्पष्ट उदाहरण है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाधक्य होते हुए भी उनकी शब्दावली में जितनी सरसता है, अन्यत्र नहीं । तत्सम के साथ तद्धत रूपों के समुचित प्रयोग में बाफ़ी हिचकिचाहट नहीं । श्रीमती महादेवी जी ने अपने काव्य में भाव गति को विशेष महत्त्व दिया है।

पन्त और महादेवी ‘ शीर्षक निबन्ध ’ में छायावादी आलोचक शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि पन्त ने जिस सही बोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उस मार्मिकता देकर प्राण प्रतिष्ठा कर दी । ताजमहल के भीतर उन्होंने दीफ़ जला दिया । भाषा के सौन्दर्य में फ़ीत बेजोड़ हैं, अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी । महादेवी गीतों की रानी हैं, उन्होंने लयतत्त्व के माध्यम से अपने भाव तत्त्व को पूर्णतया सुरक्षित रखा है, इन्द्र के निवाँह तथा तुलु बनाये रखने के लिए प्रायः कवि शब्दों को तोड़ा मरोड़ा करते हैं और भावों को भी पर्याप्त चाति इस प्रकार पहुँचती है, महादेवी जी ने इस दृष्टि से शब्दों को सबसे कम तोड़ा है या बिगाड़ा है,

कुछ ही इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं जैसे आधार के लिए 'अधार', 'ज्योति के स्थान पर 'ज्योती' आदि।

सूक्ष्मतम भावों को वाणी प्रदान करने के लिए प्रायः कवियों को लाक्षणिक प्रयोगों का आश्रय लेना पड़ता है। विभिन्न प्रतीकों के प्रयोग से सैकतात्मक भाषा लिखने में महादेवी जी पटु हैं। कायावाद काल में प्रतीकों का मुक्त प्रयोग बढ़ा। इन प्रतीकों में विविधता तथा अनेकार्थता मिलती है। कायावादी कवियों ने जो प्रतीक प्रयुक्त किये हैं उनके इतर भी महादेवी के काव्य में मिलते हैं। कुछ प्रतीकों में मौलिक दृष्टि भी मिलती है। वेदना की अभिव्यक्ति के लिए महादेवी जी ने प्रतीकों का व्यापक आश्रय लिया है। वेदना के लिए मुख्यतः 'दीपक' प्रतीक अपनाया है जिससे आन्तरिक वेदना व्यक्त होती है। वेदना की गहनता के लिए और भी प्रतीकों का प्रयोग किया है। यहाँ पर हम निम्नलिखित उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं :

- १  
दीपक - करुणा जीवन के लिए  
जलना - विश्व सेवा के निमित्त आत्म त्याग

महादेवी जी ने कुछ प्रतीक सीधे भारतीय संस्कृति से अपनाये हैं। देखिए-

'नीलम मरकत के सम्पुट दो  
जिनमें कनका जीवन मोती । २

'नीलम मरकत के सम्पुट' प्रतीक केदाराण्य में मैत्रेय को भगवान् ने उपदेश दिया था कि माता-पिता सीप की तरह हैं।

महादेवी जी कृत 'यामा' में प्राप्त प्रतीकों

१- मूक करके मानस का ताप, सुलाकर वह सारा उन्माद ।

कहा सीसी यह अद्भुत प्रीति, मुग्ध है मेरे छोटे दीप ।। यामा पृ० ५३

२- यामा- महादेवी पृ०

के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं :

- अधिरा - विषाद  
 बदली - सतों और भक्तों के यहाँ धीरे, गंभीर, सेवा करने वाली  
 वर्णा - करुणा  
 ग्रीष्म - क्रोध  
 बसन्त - आनन्द, प्रफुल्लता, सजगता  
 फलहर - विषाद, निराशा  
 मलयपवन - मधु और रश्मि  
 मकरन्द - वासू  
 नभ की दीपावली - तारकगण  
 मधुशाला - विश्व  
 चषक - मानव जीवन  
 वीणा - हृदय, आत्मा  
 वीणा के तार - हृदय के भाव  
 गायक - साधक  
 प्रभात - आनन्दोद्रेक  
 उष्ण - सुख  
 चन्द्रिका - सुसात्मक परिस्थिति, प्रिय की सुख स्थिति  
 चन्द्र ज्योत्स्ना - शांति, प्रेम  
 प्याली - जीवन का प्रतीक  
 अशुसिक्त - वेदना का प्रतीक

---

१- वासू के लिए नक्षत्र , आसों का फूल, तुलिन आदि का भी प्रयोग हुआ है ।

प्याली - जीवन का स्त्रीक

अशुसिद्ध - वेदना की अनुभूति

रात्रि- जीवन का विषाद

<sup>१</sup>  
कालिन्दी - कुपारा

मधुमास - आनन्दभाव

कली- सुन्दरी

फन - प्रेमी नायक

<sup>२</sup>  
ममर - सानान्य सुख चाहने वाला गृहस्थ या कर्षक  
मुक्त आनन्द विलास करने की चिन्ता न करने  
वाला

मधुप - अनुरक्त भाव

तरी - मानव जीवन

फतवार - साहस भाव

लहर - हृदय का भावावेग

मंफला - चाँद, संघर्ष, विघ्न बाधाएँ

१- उमड़ जाईं री दृगों में सजनि

कालिन्दी निराली ॥ यामा

२- देकर लौंम दान फन से

कहते जब मुरझाये फूल

जिसके पथ में बिहे वही

क्यों भरता इन जाँखों में धूल ?

जब इनका क्या सार मधुर

जब गाँधी भौंरों की गुँजार

ममर का रोदन कहता है

कितना निश्चुर है रसवार ॥

- यामा

विजली - वेदना की व्याप्ति  
 वीरदमाला - अशु प्रताह  
 तम, अन्धकार - अज्ञानाच्छादित आत्मा  
 प्रकाश - मन का आलोक  
 साध्यगगन - अलौकिक के प्रति अनुराग  
 गोधूलि - करुणामिलन बेला  
 सरिता - करुणा  
 रश्मि - ज्ञान की किरण  
 शृंगार - मन का उत्साह, आह्लाद  
 लू - प्रेम का अन्त  
 सागर चक्र - संसार चक्र  
 बुद्बुद - दाण्ड  
 तारा - असमर्थ विवेकवादी  
 इन्द्रधनुष - मधुर मिलन की स्मृतियाँ  
 फकार - हृदय का स्पन्दन  
 तरल मोती - आँसू

महादेवी जी के प्रतीकों पर आचार्य विनयमोहन शर्मा ने 'महादेवी की कविता' शीर्षक निबन्ध में विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं -

“शब्द की अमिथा शक्ति का बड़ा जरा भी सम्मान नहीं है। लक्षणा, प्रतीक और व्यंजना से घोरप्रोत है। कविसिद्ध प्रतीकों के प्रयोग में बहुत स्वच्छन्द है। एक प्रतीक एक वर्ण में सब पण्ड प्रयुक्त नहीं होता। कभी कभी भिन्न स्थलों पर सन्दर्भ के अनुसार भिन्न वर्ण देता है। इसी से काव्य प्रायः दुर्बोध हो जाता है।

## दुरुहित की प्रवृत्ति

भावों की अभिव्यक्ति में 'दुरुहित' विशेष सहायक सिद्ध हुई है :

'मेरे निनिमेष पलकों में  
मला गए क्या-क्या उत्पात ।' १

'बूढ़-बूढ़ होकर भरती वह  
भरकर रत्न-रत्न जाती ॥' २

'चाह चाह थक-थक कर  
हो जाती प्रेतर से प्राण ॥' ३

'सिहर सिहर उठता सरिता-उर  
बुल बुल पड़ते सुमन बुधा भर  
मचल मचल जाती पल फिर फिर ॥' ४

'रोम रोम में नन्दन पुलकित  
साँस-साँस में जीव रत रत ,  
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित  
वापस से लिख लिख जाता है  
कितना अस्थिर है संसार ॥' ५

१-	यामा - महादेवी	पृ० ३
२-	,,	पृ० १२७
३-	,,	पृ० ११७
४-	,,	पृ० १३०
५-	,,	पृ० १४३

“पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन  
आज नयन आते ययों भर- भर ।। १

“शशि को बूने मचली सी  
लहरों का कर कर चुम्बन ।  
क्षिप क्षिप किरणों न आती जब  
मधु से सीधी गलियों में । ” २

“करते हो आलोक यहां  
बुझ बुझ कर कोमल प्राण । ” ३

“जब तारे फैला फैला कर  
सूने में गिनता आभाश । ” ४

“जितने निष्फल जीवन से  
जल जल कर देखी राहें । ” ५

“जिनकी रज को धी-धी जाता था  
मेघों का मोती सा नीर । ” ६

“घुल घुल जाता यह हिम- दुराव  
गा गा उठते चिर मूक भाव  
अलि सिहर सिहर उठता तरीर । ” ७

१- यामा- महादेवी पृ० १३१

२- ,, पृ० ६

३- ,, पृ० १०

४- ,, ०५० नीतिार, १२

५- ,, पृ० २४

६- ,, पृ० ४६

७- ,, पृ० ७०

इन बातों में करुणा के

घिर घिर आते थे सावन । १

इसी प्रकार मधुर-मधुर , पुलक-पुलक , विहंसि-विहंसि , बिसर-बिसर , सज-सज , सजल-सजल , सरल-सरल , मदिर-मदिर आदि दुरुक्तियों काव्य में मरी पड़ी हैं ।

इन सभी दुरुक्तियों में वचयित्री को कनकन  
( कण कण ) विशेष प्रिय हैं -

जाती नवजीवन गरसा

जो करुणा घटा कण कण में । २

0 0

हुषमा का कण कण एक सिलाता

राशि राशि फूलों के वन । ३

0 0

कन कन में बिसरा है निर्मम । ४

0 0

कन कन में बिसरी रोती है समाधि में । ५

कहीं कहीं तो एक एक पंक्ति में दुरुक्तियों की  
भीड़ होती जाती है -

१- यामा- महादेवी पृ० ८४

२- ,, पृ० ८६

३- ,, पृ० ११४

४- ,, पृ० १२

५- ,, पृ० १५



पीली धक भुकभुक भूमभूम  
 तू घूँट घूँट फनिल सीकर  
 मैं फिक्र बन पाती डाल झाल  
 सुन फूट फूट उठते पल पल  
 सुस दुस मंजरियों के बँकुर । १

### चित्रात्मकता

---

भाव विह्वलता के अनेक उदाहरण महादेवी जी के काव्य में भरे पड़े हैं जिनमें प्रेमी हृदय की वशाओं का चित्रांकन किया गया है। स्वयं एक उत्कृष्ट चित्रकर्त्री होने के कारण उन्हें इस पैली का प्रयोग करने में अधिक सफलता प्राप्त हुई है और उसके फलस्वरूप उनके काव्य में इस प्रकार के अनेक सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा-

‘ पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन  
 बाज नयन जाते क्यों मर- मर । ’ २

उपर्युक्त पंक्तियों में क्रियाओं की जागृति से मन की उस वृत्ति का भी चित्र उपस्थित हो रहा है जिसके अनुसार ‘ रह रहकर मन में ‘ हूक उठती है।

वर्ण मैत्री भी सहायक सिद्ध होती है। संक्षिप्त चित्र भी है जिनमें वेशभूषा और वाह्याकृति के सार्थक वातावरण और वाग्विक चैष्टाओं का चित्र उपस्थित हो जाता है-

‘ रूपसि तेरा धन केश पास

---

१- यामा- महादेवी पृ० १६६

२- ,, पृ० १३१

श्यामल श्यामल कोमलकोमल

लहराता सुरमित केस पास । " १

0 0 0

सौरभ मीना मीना मीला

लिपटा मृदु अंजन- सा दुखूल

चल अंचल से फर फर फरते

फा में चुगनु के स्वर्णफूल ।। " २

उपर्युक्त पंक्तियों में स्वर्ण फूल की कर्वा है जबकि निम्नलिखित पंक्तियों में स्वप्न फूले जिसमें उपर्युक्त विशेषणों का प्रयोग द्रष्टव्य है -

सुनहले सजीले रंगीले खूबीले

हसित कटकित कटु- मकरन्द- मीरे

विसरते रहे स्वप्न के फूल जन-गिन । " ३

प्रकृति बाला के अगणित अनुपम चित्र बाफ्की कविता में हैं। बाफ्की चित्रशाला में प्रकृति के अनेक रसाचित्र हैं- वृद्ध, सुन्दर, रसावों से अंकित -

मुक मुक भूम भूम कर लहरे

भरती बूंदों के मोती ,

यह मेरे सपनों की काया

भोको में फिरती रोती । " ४

---

१- याद- महादेवी पृ० १४०

२- ,, पृ० १४०

३- ,, पृ० ७७

४- ,, पृ० १४

‘ गुलाबों से रवि का पथ लीप  
जला पश्चिम में पहला दीप  
विहँसती सन्ध्या भारी सुहाग  
दृगों से फरता स्वर्ण पराग । ’ १

श्रीमती महादेवी जी ने चित्रों को प्रस्तुत करने में प्रायः रूपक तथा उपमा वर्तकारों का आश्रय लिया है। ध्वन्यात्मकता से भी चित्र अधिक स्पष्ट हो सके हैं।

### ध्वन्यात्मकता

चित्रों में जहाँ उपर्युक्त ध्वनियों की योजना की गई है वहाँ चित्र में और भी अधिक सजीवता आ गई है। यथा-

‘ जब उनकी चितवन का निर्फर  
भर देता मधु से मानस-सर  
स्मित से फरतीं किरणों फर-फर  
पीते दृग जलजात । ’ २

0

0

‘ मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि  
जलि मुँजित पङ्क्तों की किंकिणि  
भर पङ्क्त-गति में आ बस तरंगिणि । ’ ३

उपर्युक्त वर्णों की आर्यायोजना और शब्दों की ध्वनियाँ नृत्य का चित्र उपस्थित करने में सक्षम हैं। लघु वर्णों की बार बार आवृत्ति मन्द मन्द गति से होने

-----

- १- यामा- महादेवी पृ० ७२  
२-       ,,       पृ० ६२  
३-       ,,       पृ० १३०

वाले नृत्य का श्रोतक है। सागर गर्जन से लवले की ध्वनि और रुनरुन से मंजीर की किंकिणी की अनुस्वर- युक्त ध्वनि लघु वर्ण धुंधल की ध्वनि से गोल से नृत्य-मय वातावरण उपस्थित करती है -

‘ बालोक सिमिर रित वसित नीर

सागर गर्जन रुनरुन मंजीर

उड़ता फंफा में बलक जाल

मेघों में मुखरित किंकिणि स्वा

वसरि तेरा कानं हुन्दर । १

सन्ध्या, रात्रि और प्रातःकाल के वातावरण का चित्रण अमिथित संध्यावर्णातः अन्य कवियों द्वारा प्रस्तुत चित्रों से अधिक मन पर प्रभाव डालती है। यथा-

‘ शिथिल मधु पवन, गिन गिन मधु कण

हर सिंगार फाँटे हैं कर कर । २

महादेवी जी के यहां एक और चित्रकला की लोह में काव्यकला खेलती है और दूसरी ओर काव्यकला की श्रुतिता ऐसा और रंग के सहारे चित्रित ( मूर्त हो गई है ) उनके चित्रों में दीप्ता, लज्जल, लालक आदि का प्रयोग वैसे ही है जैसे उनके गीतों में ।

चित्र रैली की पूर्णता को प्रदान करने के लिए काव्य में रंग- वैभव की संयोजना से भावनाएं तथा विविध दृश्य उपस्थित की जाते हैं -

‘ सु जल जल जिलना हीता राय

वह समीप आता ग्लनामल ,

१- यामा- महादेवी पृ० १६५

२- ,, पृ० ११०

नष्टुर मिलन में मिट जाता तू  
 उसकी उज्ज्वल स्मित में मुलमिल  
 नदिरमदिर मेरे दीफ जल  
 प्रियतम का फा आलोचित कर । " १

रंग का प्रयोग रुबिकर होने के कारण काव्य  
 में भी उसका प्रयोग अत्यधिक होना स्वाभाविक ही है ।

### अप्रस्तुत योजना

महादेवी जी के काव्य में उपाय-उपमान के  
 अमूर्त रूप विशेष रूप से व्याप्त हैं। सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए  
 मूर्त तथा अमूर्त के लिए अमूर्त की योजना कन्यावादी काव्य शैली की प्रमुख  
 विशेषता है, वैसे मूर्त से मूर्त की अभिव्यक्ति में आप नहीं मिल पाती।  
 ऐसे स्थलों पर भी नौलिकता का परिचय मिलता है। यह रूप राम्य, गुण धर्म  
 राम्य तथा प्रभाव राम्य के आधार पर संयोजित है।

### प्रभाव राम्य

"तड़ित है उपहार तेरा  
 बादलों का प्यार मेरा ।"

### मूर्त-मूर्त

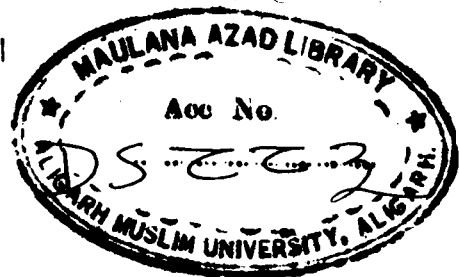
"जब कपोल गुलाब पर शिशु प्राप्त के  
 झूलते नचात्र जल के बिन्दु से ।" २

### अमूर्त-मूर्त

"प्यार की तरलता विधुत के  
 स्वप्नों के लिए चाँदनी के बादल ।"

१- याता- महादेवी पृ० १४५

२- ,, पृ० १६०



मूर्त्ति- अमूर्त्ति

शून्य नम में जब उमड़ दुस्मार् सी  
 नैश तम में सघन का जाती घटा  
 बिसर जाती जुगनुओं की पंक्ति सी  
 जब सुनहले आँसुओं के हार सी ॥ १

अमूर्त्ति- अमूर्त्ति

“आव बन मधुर मिलन चाँगा  
 पीड़ा की मधु कसक सा  
 हंस विरह उठे होठों में  
 प्राणों में एक पुलक सा ॥” २

इस प्रकार के सैकड़ों उपमान जिनमें मौलिकता भी पर्याप्त है, महादेवी जी के काव्य में स्थान स्थान पर सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। यथा-

“चाँदी सी स्मित”  
 “मोम सी पीड़ा”  
 “धूमिल घन सा”  
 “निदाघ से मानस में”  
 “निर्धन के घन सी हास रेख”  
 “मधुर आस्व सी तेरी याद ।” ३  
 “बलबाला के गीतों सा मधुमास”  
 “तमकारा बन्दी सान्ध्य रंगों सी चितवन”  
 “चपल पारद सा विकल तन”  
 “सजल नीरव सा भरा मन ।” ४

१- यागा- महादेवी पृ० ७६

२- “,,” पृ० ७७

३- “,,” पृ० ५४

४- “,,” पृ० ४

कहीं कहीं विराट् कल्पनायें मिलती हैं, जैसे एक स्थान पर कवनि तौर वम्बर को विशाल सीप बनाकर उसमें अपार जलधि के तरल मोती को प्रतिष्ठित किया है -

“ कवनि वम्बर की रूपहली सीप में  
सरल मोती सा जलधि जब काँफ़ता  
तैरती धन मृदुल हिम के पुंज से  
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में । ” १

कुछ रूपक इस प्रकार हैं - लक्ष्य- ज्योतिष,  
पात्र- शार, मुहुर- मानस, पत्क-दोल, दृग- द्वार पत्क प्याले, मानस-  
मन्दिर, विश्वासों का नील, पल्लव के घूँघट सुकुमार ।

कुछ सांख्यिकों की बानगी लीजिए-

“ इन हीरक से तारों को  
कर झुर बनाया प्याला  
पीछा का सार मिलाकर  
प्राणों का वासव डाला । ” २

रूपकों में भी विराट् कल्पनायें प्राप्त होती हैं-

“ विश्व बीणा में कव से मूल  
फँदा था मेरा जीवन-तार । ” ३

### मानवीकरण

आध्यात्मिकी कवियों ने प्रकृति को सभ्यतम व्यक्तित्व

१- यामा- महादेवी पृ० ७६

२- ,, पृ० २२

३- ,, पृ० १०५

प्रधान करते हुए मानवीकरण<sup>१</sup> की ओर अग्रसर है। प्रकृति के वह ~~ऐसा~~ रूप को न लेकर उसके गत्यात्मक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है-

“ रजत रश्मियों के तारों पर ,  
केलुध सी गाती थी रात । ” १

“ अलसाती थी लहरें पीकर  
मधुमिश्रित तारों की ओर । ” २

“ मानव दोलों में लोती शिशु  
इच्छाएं अनजान ,  
उन्हें उठा देती नभ में दे  
द्रुत पंखों का दान । ” ३

“ गर्जन के द्रुत तारों पर  
चपला का केलुध नर्तन ”

“ निशा को धी देता राकेश  
चांदनी में जब अलकें खोल  
कली से कहता था मधुमार  
बता दो मधु मदिरा का मील । ” ४

१- याना- महादेवी पृ० ७४

२-     ,,             पृ० १३

३-     ,,             पृ० १०३

४-     ,,             पृ० १



विरोधाभास के उदाहरण भी मिलते हैं। विरोधाभास

१- दो विरोधी धर्मों का प्रभाव साम्य तथा २- विरोधपूर्ण शब्दों के प्रयोग के आधार पर संयोजित किये गये हैं :

“ताज है जलती शिखर चिंगारियाँ झुंकार माला ।

ज्वाल अक्षय कोष्ठा है बंगार धरी रंगशाला ।” १

### सूक्ष्म अनुभूति

महादेवी जी की दृष्टि में कविता हृदय की अनुभूति है। पालिश करने से उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए वे जो रचनाएँ लिखती हैं एक ही बार लिखती हैं, उसे “संशोधन”, “इरादा” या “पालिश” की कसौटी पर नहीं कसती। यही कारण है कि उन्हें कृत्रिमता का आभास नहीं मिलता और वे हृदय से उद्भूत भावों और अनुभूतियों की स्वरूपा प्रदर्शित करती हैं। इस कृत्रिमता के कारण उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल हैं। जैसे-

“रजत प्याले में निद्रा ढाल

वाट देती जो रजनी बाल

उसे कलियों में बाँसू घोल

जुकाना पड़ता किसको मोल ? २

नित सुनहली साँझ के पद से लिपट जाता क्षीरा ।

पुलक फंसी विरह पर उड़ बा रहा निखल मेरा ।”

कौन जाने है कसा उस पार

तम या रागमय दिन । ३

१- यामा- महादेवी पृ० २१८

२- ,, पृ० ७१

३- ,, पृ० ७१

‘ यामा ’ में विशेषणों का सार्थक प्रयोग भी उपलब्ध होता है। विशेषणों में अनुप्रास की भालक भी मिलती है -

‘ चिन्तित चितवन  
लकीली लसिकार  
विजन विपिन  
भूनि जीवन । ’ १

महादेवी जी को ईला । ईले प्रत्ययों से निर्मित शब्द विशेष प्रिय हैं -

‘ रणनी के श्याम कपोलों  
पर ढकीले श्रम के कन । ’ २

‘ लठीले मेरे रोटे प्राण । ’ ३

विशेषण का संज्ञा रूप में प्रयोग मिलता है -

‘ सो रहा है मेरा स्कान्त । ’ ४

कोमलकान्त फावली

गुण की दृष्टि से माधुर्य गुण साफ़ी कविता में सर्वत्र व्याप्त है। माधुर्य के साथ ही प्रसाद गुणयुक्त शब्दावली भी मिलती है। कोमल वर्णयुक्त कोमल कान्त फावली फे फे दृष्टिगत होती है -

‘ श्यामल श्यामल कोमल कोमल

१- यामा- महादेवी पृ० ३४

२- ,, पृ० ८०

३- ,, पृ० ३०

४- ,, पृ० ४४

लहराता सुरमित केश पास । " १

० ०

" कोमल कोमल लज्जित मीलित  
सौरभ सी लेकर मधुर पीर । " २

० ०

मधुरिमा के, मधु के अवतार  
सुधा से, सुषमा से, रविमान  
जासुओं में सहनें अभिराम  
तारकों से हे मूक अज्ञान  
सीसकर मुस्कानि की जान  
कहाँ जाये हो कोमल प्राण । " ३

" पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृत भी  
मधुर भी हूँ और रिक्त की चादनी भी हूँ । " ४

महादेवी जी को " चिर " शब्द बहुत प्रिय

है-

" यह चिर लुप्त हो जीवन  
चिर वृष्णा हो मिट जाना । " ५

- 
- १- यामा- महादेवी पृ० १४०  
२- ,, पृ० १२६  
३- ,, पृ० ६२  
४- ,, पृ० १२६  
५- ,, पृ० २४६

“ चिर करुणा धन ” १

० ०

“ नीलों में भर चिर सुख चिर दुःख

चिर वृत्ति कामनाओं की

सुख की निरपूरति यही है

चिर ज्यैय यही जलने का

दुख का चिर सुख ही जाना । ” २

पन्थ शब्दों में “ तुहिन ” का प्रयोग बहुत मिलता है। यथा-

“ तुहिन के मुल्लों पर हविमान । ” ३

० ०

“ तुहिन बिन्दु सा, मंजु सुमन सा । ” ४

० ०

“ तुहिन कणों पर मृदु कंचन से

सेज दिखा दे गान । ” ५

० ०

“ रजत करों की मृदुल तूलिकासे

तुहिन बिन्दु सुकुमार । ” ६

### लोक शब्दावली

लोक से दूर न रहने के कारण महादेवी की लोक

१- यासा- महादेवी पृ० ३६

२- ,, पृ० ७५

३- ,, पृ० ८०

४- ,, पृ० १५

५- ,, पृ० ११

६- ,, पृ० २

गीतों से प्राप्त होने वाले सख्य प्रवाह से प्रभावित हुए गिना न रह पायीं।  
यही कारण है कि ग्रामीण शब्दावली भी सख्य रूप में वास्तविक काव्य में प्रवेश  
पा गई। इसके एक विशेष काव्य सौन्दर्य भालक उठा है। ये शब्दों का सख्य  
प्रयोग हुआ है। रात्रि के स्थान पर 'रैन' तथा बाहु के लिए 'बल्लभ' 'रो'।  
ही प्रयोग हैं। 'लीप' का सटीक प्रयोग द्रष्टव्य है -

'तुलाओं से रवि का पल लीप ।' १

ब्रजभाषा के कुछ शब्द एक निश्चित मनोभाव  
में जितने सटीक बैठते हैं उतने संस्कृत के नहीं। 'चितचोर' ऐसा ही शब्द है।  
विरहणी के लिए मारण शब्द में जो कर्तृणा है 'चिरोर' में जो मरु  
पीड़ा है, सपनों में जो प्यास है, वह संस्कृत शब्दों में नहीं मिलता। वास्तव  
ऐसे शब्दों को वाधुनिक कविता ने प्रेम से गले लगाया है -

'कह जाती उस पार तुलाता  
है हमको तेरा चितचोर ।' २

0 0

'इन्हीं पलकों ने कटकहीन  
किया था वह मारण बेपीर ।' ३

ऐसे ही अनेक शब्द जैसे- छौल, धनराना, उढ़ाना, पाँति, प्राण, कपलार,  
भाना, मरम, अधार, जोरना, बिहलना आदि मिलते हैं।  
वरवी- फारसी शब्दावली

संस्कृत के तत्सम शब्दों की ओर विशेष ध्यान

१- यामा- महादेवी पृ० ७२

२- ,, पृ० ६४

३- ,, पृ० ५४

होते हुए भी महादेवी जी के काव्य में चले हुए बरनी- फाहरी के शब्द भी जा गए हैं। बाफो वफो काव्य में रहस्यवाद से सम्बन्ध रखने पर दो शब्दों का विशेष प्रयोग किया है। बहु प्राप्ति शब्द तो प्रवाह में समावृत्ति की ओर धारते हैं। जैसे-

“विश्व हा लेती लोटी बाह  
प्राण का बन्दीखाना त्याग।” १

“दाग” शब्द विशेष आवृत्ति पर है-

“बाँसों की नीरव मिछा में  
बाँस के मिटते दागों में।” २

0 0

“जक्ति हा दूने में संसार,  
गिन रहा हो प्राणों के दाग।” ३

0 0

“छुट्ट दल से वेदना के दाग को।” ४

### क्रेणी सगुदावली

महादेवी जी के गम में तो क्रेणी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है पर फम में अनुवाद के रूप में कुछ शब्द लायाया ही जा गए हैं।

“हिम बधर” का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है-

- 
- |    |       |         |        |
|----|-------|---------|--------|
| १- | याना- | महादेवी | पृ० ३० |
| २- | ,,    | पृ० १२  |        |
| ३- | ,,    | पृ० २१  |        |
| ४- | ,,    | पृ० ४०  |        |

“ देस रहे अविराम तुम्हारे  
हिम बधरों की राह । ” १

“ नाश के हिम बधरों से मौन  
लगा देता है आकर कौन ? ” २

### व्याकरणिक मूलें

“ बमिलाणा ” का बहुवचन “ बमिलाणायें ” होता है , पर ऐसा प्रतीत होता है कि “ बायें ” से तुल्य मिलाने के लिए ही कवयित्री को यह प्रयोग करना पड़ा हो -

“ होकर सीमाहीन, शून्य में  
मंडरायेंगी बमिलायें । ” ३

लिंग का प्रयोग तो किसी वस्तु के रूप के आधार पर न कर कवि की मनोदशा पर आधारित है। कहीं कहीं नस्तीन प्रिय रूप भी मिलते हैं -

बाज न सज बलकों से हीरे  
बौंका के जग सांस न सीरे । ४

श्रीमती महादेवी जी को “ मय ” बहुत सच्चावली भी बहुत प्रिय है। जैसे- मधुमय, विजामय, स्वप्नमय, विजाडमय, रहस्यमय , जलमय, सुखमय, दुःखमय, श्रवणमय, नयनमय, परिमलमय , सुविमय, भ्रान्तिमय,

१- यामा- महादेवी पृ० ११६

२- “ “ पृ० १४२

३- “ “ पृ० ५

४- “ “ पृ० २४७

शान्तिमय, जलकणामय और इसी प्रवाह में बहुवचन के ताप भी - सब सोई दिया है ।

निष्कर्षों रूप में कहा जा सकता है कि श्रीरही महादेवी जी के गीतों का एक बड़ा पादार्णव उनकी सिन्धी जनसौत सांगों में गढ़ी हुई भाषा है। भाषा की दृष्टि से वाप वाज सिन्धी के किसी भी कवि से पीछे नहीं हैं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुन चुन कर शब्दों की जड़ें नहीं मिलती । किन्तु इस गहुर निर्भरिणी का मस्तिष्क कलकल निगाह वद्वितीय है। यह शब्दों की सिरफ़ाला वाफ़की बफ़ी सिन्धी है, न भाषा बलकार मार से झुकी वद्वितीय है किन्तु यह चतुर कारीगर के गढ़े के बलकार हैं एक एक शब्द चुन चुन कर इस सिन्धी ने रचाया है।



चतुर्थ अध्याय : 'यामा' का प्रयोग

---

- १- 'यामा' का दर्शन
- २- 'यामा' में प्रकृति विमर्श
- ३- 'यामा' का प्रेम निरूपण
- ४- 'यामा' में रहस्यवादी परिचरणा

## यामा का दर्शन

क्या कवि मनसा दर्शन की खोज में रहते हैं ?

अथवा दर्शन ही अन्त में काव्य के सिवाय कुछ नहीं ? यह विचारणीय विषय है। यदि हम दर्शन को सत्यान्वेषण मानें अथवा यह मानें कि दर्शन सत्य के कारणों की खोज करता है तो कविता से सम्बन्धित दर्शन में कुछ नहीं है। जहाँ पर सिवाय क्रन्द व कुछ अलंकारों के कविता के विशिष्ट गुणों का अभाव है, वह काव्यमय नहीं हो सकता। किन्तु कविता वस्तुओं पर मकसत की तरह नहीं फैलाई जा सकती थी, वह प्रकाश की तरह फैलनी चाहिए और ऐसा माध्यम हो जिसके द्वारा हम उसे समझ सकें। दर्शन की उपपत्ति ( विवेक, तर्कशक्ति ) और खोजें दुष्कर होती हैं और यदि कविता उसके सम्बन्धित कर दी जाय तो वह कृत्रिम और तालित्य विहीन हो सकती है। परन्तु दर्शन की दृष्टि भव्य और उच्च होती है। यह जिस क्रम को संसार के समझा रखता है या प्रकट करता है वह मन को सुन्दर, दुःखान्त, सहानुभूतिमय लगता है, और प्रत्येक कवि उसे बड़े अथवा छोटे पैमाने पर फखरे का हमेशा प्रयत्न करता है।

स्वयं दर्शन में उपपत्ति व खोजें केवल अनगढ़ साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। वे अन्त में अन्तर्दृष्टि में विलीन हो जाते हैं या उसके उच्च अर्थ में यदि लें तो सिद्धान्त बन जाते हैं अर्थात् सब चीजों का उनके क्रम वा योग्यतानुसार समाहित चित्त से विचार करना। यह विचार करने की प्रक्रिया सृजनशील है, प्रतिमान्वित है। पर जिसका मन विशाल व हृदय सौम्य नहीं होता है वह इस सिद्धान्त तक नहीं पहुँच सकता। जो दार्शनिक इसकी सिद्धि पाता है वह उस दाणा के लिए कवि है और वह कवि जो स्वयं की अभिजात कल्पना से सब चीजों का पुनर्निर्माण करता है या एक चीज का सबकी पार्श्वभूमि में पुनः निर्माण करता है वह उस दाणा के लिए दार्शनिक हो जाता है।

कविता का झोटापन उसकी काव्यात्मकता में बाधक नहीं होता । उसकी काव्यात्मकता उसके विशाल परिणाम के आयामों में रहती है और कविता में बहुत चीजें भरने से यदि वह बोझिल हो जाय तो उसका दोष कवि की कमजोर बुद्धि में है, कविता के उन आयामों में नहीं । एक तेज दार्शनिक दृष्टि और संश्लेषणात्मक कल्पना बहुत से दार्शनिक सत्यों को अनायास फलें पाती है, और इसके फलस्वरूप काव्य में जो चित्र बनता है वह विस्तीर्णता के कारण अप्रभावक और कमजोर न बनकर गहराई व शक्ति से भरा हुआ रहता है। इसका कारण यह है कि उसमें झोटी कविता की तरह अन्विति तो है ही पर उसके साथ साथ परिमाण भी रहता है। गैष्ट नाटक के उत्कर्ष क्षण में ( ऐसा लगता है जैसे कि हमारा सारा जीवन वर्तमान के एक क्षण में ) केन्द्रीभूत हो गया हो और उसकी उपयुक्तता हमारी चेतना को और निर्णयों को रूप देती है, क्योंकि दार्शनिक कवि के लिहाज से मनुष्य की यह सारी दुनिया एक साथ समाहित है और वह कवि उस हद तक कवि नहीं है, जब तक एक उद्गार में स्वयं के परिचित जगत् को अभिव्यक्त नहीं करता है, और खुद के भाग्य का, लक्ष्य का स्वागत नहीं करता है। जीवन को समझना जीवन का सार है और कविता की सबसे बड़ी उन्नति देवताओं की भाषा बोलना है- देववाणी बन जाना है।

काव्य और दर्शन दोनों नागर कलाएँ हैं, वे दोनों ~~कलाएँ~~ ही एक विशिष्ट काल और देश में पली हुई विशिष्ट प्रतिमा के योग्य हैं । एक कवि जो भावना और संवेदनाओं के रागर में तैर कर और यथार्थ तथा अयथार्थ सम्भाव्य और असम्भाव्य, मानुष व अमानुष के चित्रों की खोज में रहता है वह कला की कर्मशाला में सामग्री ला सकता है। मगर वह स्वयं कलाकार नहीं बन सकता । इस जाग्रत कला का एक और कार्य है जो कवि के आदर्श को निरूपित कर सकता है और जिसकी ओर हम विशिष्ट परिस्थितियों में बढ़ रहे हैं। हमारी एक एक प्रतिक्रिया एक अन्तर्निहित तत्त्व की अभिव्यक्ति

मात्र है , हमारे स्वभाव का एक धर्म जो हमें खुद की दिशा को निर्देशित करता है और जिस दिशा में सहारे व्यावहारिक कलायें दुनिया को पलट सकती हैं । जो बाहर की दुनिया है वह भीतर की दुनिया के लिए ही है , नियम या नियन्त्रण अन्तिम स्वातन्त्र्य के लिए है और जीत स्वयं को पाने के लिए है । यह भीतर की दुनिया बड़ी ही समृद्ध है यानि उसमें केवल चेतना मात्र ही नहीं रहती है जिसके सहारे हमारी काया बाहर की दुनिया से खुद को सहलाती रहती है । हमारे प्रत्येक अर्थ में एक अनिश्चित गुण रहता है और हमारी प्रत्येक बोली में एक अनिश्चित लय और छन्द रहता है, प्रत्येक सेल में उसके विधायक नियम रहते हैं, प्रत्येक पेट में उसकी कोमल थिरकन रहती है और रहस्यमय सपने रहते हैं। जीवन एक किनारा है जो लीला का है जो बढ़ सकता है, यदि उसकी केन्द्रीय शक्ति को स्थगित करें । हर नागरिक सम्यक्ता कर्मयोग के साथ ( कर्म कौशल ) लीलाओं को बढ़ा सकती है। जीवन का प्रत्येक मोड़ अर्थों या विचारों से ही संघालित होता है। अर्थों का साक्षात्कार ही दर्शन है । प्रत्येक रूपा में दर्शन और साहित्य गाड़ी के दो पहियों की भांति सहयुक्त रहते हैं। " साहित्य " दर्शन की पूर्णता है। दर्शन बुद्धि के आधार पर जिन बातों को निश्चित करते हुए शंका करता रहता है, साहित्यिक उसी में अपनी भावना द्वारा निश्चितता ला देता है । " जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई सुवर्णादि धातुओं को खोजने वाला व्यक्ति भीतर पहुँचकर चारों ओर छिटकती हुई धातु गर्भित खनिजों को उधड़ता है और उस संस्थान से परिचित हो जाता है जिससे उस खान का रूप निर्मित हुआ है, उसी प्रकार की कुछ स्थिति साहित्य में गर्भित विचारों के इति-हास की भी है। "

दर्शन को अपने में समाहित कर जो व्यक्ति कहलाती है। कविता के माध्यम से केवल विचारों को सिद्धान्त के रूप में रख देना

कवि का काम नहीं है। दार्शनिक विचारों से ओत प्रोत काव्य की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि कवि अपनी व्यक्तिगत साधना को सामूहिक साधना में और दार्शनिक निश्चयों को जनता के हृदय में उतारने में कितना सफल हुआ है। अपनी साधना में कवि कितना जिया है- दर्शन और जीवन का कितना स्वरूप हुआ है।

श्रीमती महादेवी वर्मा का काव्य ऐसा ही है

जिसने अपनी दर्शन को समाहित कर लिया है उसके पीछे उनका अपना जीवनदर्शन है। महादेवी जी में बचपन से ही इस विश्व के प्रति विस्मय-भावना बिपी हुई थी। बड़ी हुई तो पहले से जाती हुई रहस्य-भावना से उनका परिचय हुआ। उनका अपना जीवन, जीवन की करुणा, वेदना, अभाव, सुख-दुःख, लोक-सेवा को अपना लेता, विभिन्न दर्शनों का चिन्तन, मनन उनके विगत काव्य फलक के आधार हैं। साथ ही उनके युग की परिस्थितियाँ भी उनके अनुकूल पड़ी। धर्म में आर्य समाज के प्रभाव ने, पश्चिम में विज्ञानवाद और नवीन बुद्धि प्रधान शिक्षा के सहयोग से, अवतारवाद की भावना को सिद्धांत हृदयों में सिधित किया। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के वेदान्तों सम्बन्धी व्याख्यान की रूज मानों दार्शनिक पृष्ठभूमि बनने के लिए ही उठी थी उधर रवीन्द्र नाथ की वाणी का प्रसार व प्रभाव उस समय के सभी कवियों पर लक्षित होता है। महादेवी अपने अन्तर का कुतूहल लेकर खड़ी हुई और संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थों ने उन्हें इस दिशा में प्रोत्साहित किया। इसके साथ ही संसार का जो असुख अनुभव उन्हें हुआ वह उन्हें रहस्यवाद की ओर ले गया।

महादेवी जी ने जीवन में सत्य के जिस रूप को स्वीकार किया है उसका धरातल बौद्धिक की अपेक्षा आत्मिक अधिक है। उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण सदा एकसा ही रहा है। भारतीय दर्शन के साथ साथ बौद्ध धर्म का उन पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है, परन्तु उन्होंने उसके अनी-

स्वप्नवाद को तनिक भी ग्रहण नहीं किया है। केवल संसार में व्याप्त करुणा तथा व्यथा से विशेष रूप से परिचय कराकर उनमें एक असीम करुणा तथा सहानुभूति भर दी है। परमात्मा से मिलने के लिए विकल आत्मा का आर्त्ता-क्रन्दन उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है। महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह, महात्मा गांधी और विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर उनके आदर्श पुरुष रहे हैं और सरस्वती तथा श्रीकृष्ण उनके उपास्य देवता हैं।

महादेवी जी ने वेदना को अपने काव्य का मूल तत्त्व रखा है। वेदना दुःसंपूर्ण अवश्य है पर प्रत्येक स्थिति में वह दुःखजनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही अनुभूति अभिव्यक्त होती है जो कवि को प्रिय होती है। वेदना भी प्रिय हो जाने पर काव्य का जग बन जाती है। उन्होंने वेदना को काव्य का विषय बनाकर उसके द्वारा सुखवाद का उत्सार प्राप्त करने का प्रयास किया है। इस व्यापक सत्ता में एक ऐसा आकर्षण है जो प्राणी को सदैव अपनी ओर खींचता है। मनुष्य अपूर्ण है। वह सदैव उच्च आदर्श की पृष्ठ-भूमि में अपनी त्रुटियों के प्रति सचेष्ट रहता है। कभी-कभी उस आदर्श की प्राप्ति के लिए आतुर हो उठता है। ससीम असीम में अपने को लीन कर देना चाहता है। यह प्रकृति कई रूपों में दिखाई पड़ती है। आराध्य-आराध, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि भिन्न भिन्न सम्बन्धों के रूप में प्रकट हुई है। प्रायः स्त्री - पुरुष के रूप में यह सम्बन्ध अधिक दृष्टिगोचर होता है। महादेवी जी इस विषय में कहती हैं -

“ जो सीमित है वह असी में अपनी मुक्ति चाहता है। पर इस मुक्ति को पाने के लिए उसे अपनी सीमा का समर्पण करना ही होगा। समर्पण के भाव ने ही आत्मा को नारी की स्थिति में डाली। सामाजिक व्यवस्था के कारण नारी अपना कुल शीत आदि का परिचय छोड़कर पति को स्वीकार करती है और स्वभाव के कारण उसके निकट अपने भावों को पूर्णतः समर्पित कर उस पर अधिकार पाती है। अतः नारी के रूप

से सीमाबद्ध आत्मा का असीम में लय होकर असीम हो जाना रहस्य ही समझा जा सकता है । ”

कबीर ने अपने को 'राम की बहुरिया' कहा है। सूफी मत में स्थिति पूर्णतः विपरीत है वहाँ प्रेमी, प्रेमिका से मिलने के लिए उत्सुक छिड़ाई पड़ता है, अतः आत्मा प्रेमी है और परमात्मा प्रेमिका (माझूका) है। जायसी के 'फदमावत' में रत्नसेन फदमावती को पाने के लिए विकल है। पाश्चात्य रहस्यवादी कवि पाटमोर ने भी आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के रूप में देखा है। दूसरे 'रहस्यवादी काव्य' वादवादी होगा। रहस्य-द्रष्टा को अपने आराध्य से साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वह साधारण प्राणी के स्तर से ऊँचा उठे तथा अपने आराध्य के गुणों को प्राप्त करने का उचित प्रयास करे। रहस्य-द्रष्टा अपने स्वयं में एक अपूर्व सुख का भी अनुभव करता है और उसमें नैराश्य भावना लेशमात्र भी नहीं रहती।

महादेवी जी के दार्शनिक चिन्तन एवं तद्व्यमित उनकी रहस्य-भावना (और उनके जीवन-दर्शन पर भारतीय रहस्य की मूल भावना) का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित है। इस प्रभाव को व्यक्त करते हुए डा० रामरत्न भटनागर ने लिखा है-

“ महादेवी जी के जीवन-दर्शन को कम उपनिषदों और बौद्ध दर्शन की परम्परा तक पीछे बढ़ा सकते हैं। जहाँ तक जीवन, मृत्यु, सृष्टि में व्याप्त विन्मय सत्ता और मनुष्य (ससीम) और इस विन्मयसत्ता (असीम) का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में उनके विचार आत्मदर्शी शोफोषादिक कणियों से भिन्न नहीं हैं। उपनिषद् के कण भी जीवन की अनिर्वचनीय शाश्वत अस्पृष्टता में विश्वास करते हैं। वे मृत्यु को जीवन का ही एक अविच्छिन्न वर्ग मानते हैं। इसीलिए वह मृत्यु से भयभीत नहीं होते। जहाँ वह है, वहाँ मृत्यु नहीं है,

मय नहीं है, दुःख और पीड़ा नहीं। जो उस अस्तित्व को जान लेता है, वह उसी की तरह जमर और निर्मय हो जाता है।”

महादेवी जी की कविताओं के संकलन - नीहार, रश्मि, नीरजा, और सान्ध्यगीत से उनके साध्यात्मिक चिन्तन और रहस्यवादी भावना का फल चلتा है। ‘नीहार, रश्मि, नीरजा तथा सान्ध्यगीत की २५६ कवितारें एक ही संग्रह ‘यामा’ में संकलित कर दी गई हैं। वस्तुतः ‘यामा’ में नीहार से लेकर सान्ध्यगीत तक की रचनाएँ कवयित्री के जीवन का एक युग प्रस्तुत करती हैं। इन रचनाओं में जो भाव विकसित हुए हैं उनका मूल जीवन दर्शन एवं विश्वास आदि से अब तक ज्यों का त्यों रहा है। कवयित्री ने इस युग की रचनाओं को स्पष्ट करते हुए कहा है-

“नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही झुलझल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, वैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उष्मा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सके, जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा। फिर यह सुख दुःख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में मेरे मन ने जाने कैसे उस बाजार भीतर में एक सामंजस्य ढूँढ़ लिया है जिसने सुख-दुःख को इस प्रकार कुन दिया है कि एक के प्रत्यक्षा अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।”

चिन्तन रहस्यवादी रचनाओं का एक अनिवार्य



जग है। रहस्यवादी भी एक अनुभूति प्रधान दार्शनिक है। 'नीहार' की रचनाओं में अनुभूति प्रधान है और चिन्तन को बहुत कम अवकाश मिल पाया है। किस्ती के रूप दर्शन की स्मृति बार बार उनके हृदय में सटकती है। प्रिय प्रियतम का सम्बन्ध इन्हीं रचनाओं में प्राप्त होता है। संसार की अस्थिरता, चाण मंगुरता, निष्ठुरता, निर्ममता उसके स्वार्थ और विश्वासघात का प्रतिपादन भी है। प्रकृति भी उन्हें ब्रह्म के लिए व्याकुल दिखाई देती है। प्रियतम, प्रिया और प्रकृति तीनों की रक्षा पर पृथक्-पृथक् सत्ता है, किन्तु उनका प्रियतम अज्ञात होते हुए भी सबका 'साक्षी' है। यहाँ से लक्ष्मैतवाद का बृहत् आधार उन्हें मिलता है।

महादेवी जी जिसे अज्ञात कहती हैं और लक्ष्मैतवादी भाषणा में जो 'अज्ञेय' है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह 'ब्रह्म' है ही नहीं। वह तो सही, पर मन और बुद्धि की उस तक पहुँच नहीं हैं। वह 'अवाङ्मानसगोचर' सत्य है। इन्द्रिया उसका निरूपण नहीं कर सकती, वह स्वयं अनुभूतिमय है, वह स्वयं 'देखना रूप' है, वह 'स्वयं प्रकाश' है-बुद्धि को वही प्रकाशित करता है। यथा-

वे कहते हैं उनको मैं

अपनी फुलती में देखूँ

यह कौन बता जायेगा

किसमें फुलती को देखूँ । १

द्रष्टव्य-

येनेदं ज्ञायते सर्वं तत् केनान्यत् ज्ञायताम् । २

१- यामा- महादेवी

२- पंचदशी

“ नीहार ” में जहाँ आत्मा, परमात्मा और प्रकृति पृथक् पृथक् थी, वहाँ “ रसिम ” की रचनाओं में एक ओर आत्मा (और परमात्मा) और दूसरी ओर प्रकृति और परमात्मा के द्वैत का निराकरण हुआ। अद्वैतानुसार यह दृश्य जगत् मिथ्या है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं। सृष्टि कभी हुई ही नहीं। महादेवी जी ने भी सृष्टि को स्वप्न के समान ही माना है। यथा-

“ शून्यता में निद्रा की बन  
उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन । १

द्रष्टव्य- “ अद्वितीय ब्रह्मतात्त्वे स्वप्नो यमखिलं जगत् ”।

वह अद्वितीय ब्रह्म एक बार एकाकीपन के भार से बहुला उठा-

“ हुआ त्यों सून पन का भाव  
प्रथम किसके उर में अस्तान ?  
और किस शिल्पी ने अनजान  
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण ? २

सृष्टि होने से पहले सृष्टि का अस्तित्व नहीं था और “ वसंतां ह्यं पुरुषाः ”  
यह सृष्टि उस अनन्त निर्विकार में हुई-

“ न थे जब परिवर्तन दिन रात  
नहीं बालोक तिमिर थे ज्ञात  
व्याप्त क्या सून में सब ओर  
एक कंपन थी एक हिलोर ?  
न जिसमें स्पन्दन था न विकार । ३

-----  
१- यामा- महादेवी पृ० ७१

२- “ “ पृ० ७१

३- “ “ पृ० १०६

जात्मा और परमात्मा की अभिन्नता स्थापित करने के लिए महादेवी जी ने चन्द्रमा और उसकी किरणों के उदाहरण दिये हैं, 'तुम हो विष्णु के विम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान ।' माण्डूक्य उपनिषद् के समान देवी जी ने भी यह अनेक स्थानों पर कहा है कि जन्म, मृत्यु और जन्मान्तर के परिवर्तनों को स्वीकार करने पर भी आत्मा में लाकाश के समान कोई विकार एवम नहीं ।

'नीरजा' में 'नीहार' के विचार जो 'रश्मि' में ज्ञान बनकर जाये थे अनुभूतिमय हो गये हैं। यहाँ पर महादेवी जी की विचार-धारा ज्ञान और प्रेम, ब्रह्म और जगत् तथा सूक्ष्म और स्थूल के बीच में रही है । ज्ञान की अपेक्षा यहाँ प्रेम की ओर अधिक झुकाव है। तात्पर्य यह कि विचारों को महादेवी जी ने आत्मसात् कर उन्हें अनुभूत सत्य द्वारा व्यक्त किया है । स्वरूप की विस्मृति यद्यपि नहीं है फिर भी अस्तित्व की पृथक्ता का भाव अवश्य है-

'काया ज्ञाया में रहस्यमय,  
प्रयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?'

०                      ०

'हाहूँ तो सौऊ अपनापन  
पाऊँ प्रियतम में निवासन  
जीत बनूँ तेरी ही बन्धन ।'

और प्रियतम, उपनिषद् में जिस प्रकार अन्तःकरण को पुरुष का निवास स्थान बतलाया गया है, हृदय में बसा हुआ है -

'मेरे ही मृदु उर में हंस बस ,

और - 'प्रिय मुझी में सो गया  
अब दूत को किस देश भेजू ।'

‘सान्ध्य गीत’ में उपासना भाव को लिए साधना के गीत हैं। परन्तु अनुभूति की प्रधानता होती हुए भी चिन्तनशीलता छूटी नहीं है। यह चिन्तनशीलता आसक्ति को दृढ़ करने वाली है-

‘तोड़ देता सीमकर जब तक  
न प्रिय यह मृदुल दर्पण ,  
देखते उसके अधर सन्मित,  
सजल दृग, अलङ्घ्य आनन ।’ १

यहाँ ऐसा प्रतीत होगा जैसे सूफियों से मिलती हुई यह भावना वद्वैतवादियों से भिन्न जगत् को नवीन दृष्टिकोण प्रदान कर रही है। पर ऐसा नहीं है। स्मरण रखना चाहिए कि संसार को मिथ्या सम्झते हुए भी वद्वैतवादी उसी प्रकार द्वेष नहीं रख सकते कि यह जगत् नष्ट या विलीन हो जाय। उनका केवल दृष्टिकोण बदल जाता है। प्राणी, जहाँ और चेतना का संयोग है। उसका स्थूल शरीर मृत्तिका-निर्मित है और आत्मा परमात्मा का प्रतिरूप। उस पर पृथ्वी का अधिकार है या आकाश का। इस पर अन्तिम बात नहीं कही जा सकती।

‘सान्ध्यगीत’ की इन पंक्तियों में -

‘मैं नीर भरी दुख की बदली ।  
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,  
अन्दन में आहत विश्व हँसा  
नयनों में दीप्ता से जली ,  
पलकों में निर्भरिणी पतली ॥ २

---

१- याज्ञा- महादेवी पृ० २२३

२- ,, पृ० २२७

व विस्मृत नम का कोई कोना उसका न कभी अपना होना । जहाँ थोड़ी पीड़ा हुई थी उसमें सन्देह दूर होगा ।

उपनिषद् में ब्रह्म को 'रसो वै सः' कहा है । वह जहाँ जाता है, सब सरस हो जाता है। महादेवी जी ने भी कहा है कि प्रिय की मधुर भावना से समन्वित होकर प्रिय प्राप्ति की राधना के मार्ग के कष्ट और आपत्तियाँ सब मधुर हो गये हैं और अब साधिका ने दुःख सुख में एक अद्भुत सामंजस्य ढूँढ़ लिया है। दुःख भी सरस हो गया है -

‘ विरह का युग आज दीखा ,  
मिलन के लघु पल सीखा ,  
दुःख सुख में कौन तीना;  
मैं न जानी औ, न सीखा ।

मधुर मुझको हो गया सब

मधुर प्रिय की भावना लें । ’ १

महादेवी जी के दर्शन की चिन्ता का दूसरा पक्ष है ब्रह्म के प्रति साकेतिक दाम्पत्य भाव । जिसे सन्तों ने अद्वैतवादी चिन्तन धारा को अपनी उपासना का मूल भाव बनाया और दाम्पत्य भाव या पति-पत्नी के प्रतीक द्वारा अपनी रहस्य भावना की अभिव्यक्ति की । निर्गुण ब्रह्म को इन सन्तों ने विविध नामों से पुकारा है । इसी निर्गुण के प्रति महादेवी जी ने युगानुकूल प्रतीकों से अपनी भावना व्यक्त की है। उन्होंने कबीर आदि सन्तों के विचार अवश्य अपनाये हैं पर प्रियतम के प्रति जो वाकुल प्रणय निवेदन है वह उनकी आत्मा की पुकार है। यथा-

‘ चित्रित तू मैं हूँ रेखा-श्रम

मधुर राग तू में स्वर रंगम  
 तू असीम में सीमा का भ्रम,  
 काया हाया में रहस्यमय  
 प्रियसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

तरल मोती से नयन भरे ।  
 मानस से ले, उठे स्नेह धन,  
 कसक विभुत पुलकों में हिम-कण ,  
 सुधि स्वाति की चाह पल की सीपी में उतरे ।

सूफियों की रहस्यभावना अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त को लेकर ही चली है । पर उसका मूल आधार ' प्रेम की पीर ' है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को प्रियसि और आत्मा को प्रियतम मानकर साधना की ' प्रेम की पीर ' की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। महादेवी जी ने इस प्रेमजनित आत्मानुभूति एवं चिरन्तन प्रिय के प्रति ~~कि~~ प्रकट की हुई वेदना को योग के समकक्ष माना है। सूफी प्रकृति को परमात्मा का प्रतिविम्ब मानते हैं और इसी को परमात्मा तक पहुँचने का साधन मानते हैं। महादेवी जी ने सूफियों की भाँति प्रकृति को उस विराट् का प्रतिविम्ब न मानकर सद्बोध माना है और इस प्रकार अपनी रहस्य भावना में उसका महत्त्व प्रतिपादित किया है। जहाँ सूफियों में ' प्रेम की पीर ' एकान्तिक साधना का स्वरूप है वहाँ महादेवी जी की ' प्रेम की पीर ' उनके सेवा भाव से करुणा हृदय की सजलता का पुट लिए हुए है। अतः उसमें करुणा का प्राधान्य हो गया है और फलस्वरूप यह सामाजिक वस्तु बन गई ।

महादेवी जी दुःखाधी हैं। उन पर दौड़ धर्म का प्रभाव स्पष्ट ही है। बचपन में उनमें भिक्षुणी बनने की भावना उठाने वाली थी । वस्तुतः उनका व्यावहारिक जीवन बाज भी सेवा में रत एक सच्ची भिक्षुणी का जीवन है। बुद्ध के संसार को दुःखात्मक समझने वाले वर्गों में उसका अंशमय में

ही परिचय हो गया । इससे उनकी भावनायें और दृष्टिकोण बदला । बुद्ध दर्शन के प्रभाव के कारण उनमें करुणा की भावना का गर्ह । इसी से उन्होंने बुद्ध की अहिंसा , मैत्री, विराग और करुणा की भावना को अपनाया । यह महादेवी जी के जीवन दर्शन की मूल भावना है। मनुष्य जीवन की चाण भंगुरता उन्हें व्यथित कर देती है। पर इसके साथ गहरी करुणा का भाव उनमें आया जिसमें उन्हें सेवा का सक्रिय जीवन अपनाने की ओर प्रेरित किया । जीवन की चाण भंगुरता में उनमें निराशा का संचार नहीं किया वरन् व्याधा की आर्द्रता प्रदान की जिसका व्यावहारिक रूप सेवा का जीवन है -

‘ नहीं अब गाया जाता देव,  
धकी अंगुली, हैं ढीले तार,  
विश्व वीणा में अपनी बाज,  
मिला लो यह अस्फुट भंगार । ’

प्रकृति को भी इसी रूप में देखती हैं-

‘ रजतकरों की मृदुल , तूलिका ,  
से ते तुलिन बिन्दु सुकुमार,  
कलियों पर जब आँक रहा था ।  
करुणा कथा अपनी संसार ।  
तरल हृदय की उच्चावसें जब  
भोलि मेघ लुटा जाते,  
अन्धकार दिन की चोटों पर  
अंजन वरसाने जाते ॥

000

दुःख के पद ठू बहते फर-फर  
कण कण से आँसू के निर्फर  
हो उठता जीवन मृदु उर्वर ॥

इस प्रकार जहाँ भी देखिए, वहीं पर दुःस्वाद का पुट मिलेगा । इसी कारण मुक्ति या निर्वाण ही कवयित्री का व्यय है-

“ जब असीम से हो जाएगा,

मेरी लघु सीमा का भेल ,

देखोगे तुम देव । लमरता ,

खेलोगी मिटने का खेल । ” १

महादेवी जी अपने इस दुःस्वाद के सम्बन्ध में दो कारण बताती हैं- “ जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी । कदाचित् यह रसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे छतनी मधुर लगने लगी है । ” इसके अतिरिक्त “ वनस्पति से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण, उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था, । ” इस दुःख के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती हुई वे लिखती हैं - “ दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक वृक्ष में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे अस्तित्व को हमें चाहिए मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके किन्तु हमारा एक वृद्ध बाँसू भी जीवन को अधिक मधुर , अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता । ”

महादेवी जी की वेदना वस्तुतः एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई है। इसका कारण भौतिक अभाव नहीं है पर यह उनका आन्तरिक सौन्दर्य है। यद्यपि वे दुःख और सुख के स्वरूप को स्पष्ट नहीं कर भी नहीं पाई हैं। परन्तु इसमें कवयित्री का सेवा का जीवन-दर्शन स्पष्ट झलकता है।



लौकिक प्रेम की विफलता उनकी भावनाओं के उदात्तीकरण और सेवा के जीवन दर्शन को अपनाने में कारण रूप में अवश्य विद्यमान है। मुख्यतः वेदनानुभूति की प्रेरणा उनकी कल्पना प्रवणता, बौद्ध दर्शन का प्रभाव, सेवा के जीवन दर्शन और दार्शनिक प्रवृत्ति में है। "एक बड़ा दार्शनिक सदा रोता रहता है तो इसका मतलब यह नहीं कि वह भौतिक दुःखों से पीड़ित है। वह तो संसार के दुःखों से दुःखी है। महादेवी जी की वेदनानुभूति उनके हृदय का मौन्य है, आध्यात्मिक कलाजन्य अभिव्यक्ति है।"

"नीहार" एक अनुभूति प्रधान ग्रन्थ है। उसमें चिन्तन को बहुत कम अवकाश मिला है। हृदय फकफोर जाने का ही वह परिचय देता है। जिस समय रईं जमें हुए दही को केवल फोड़ कर चुबुथ करती है, उस दशा को "नीहार" व्यक्त करता है। परन्तु मन्यन होने से धीरे धीरे नवनीत के जो कण ऊपर आते हैं वह आगे की बात है। "नीहार" की रचनाओं से हमें इतना ही पता चलता है कि सभी संसारी जीवों की भांति सामान्य गति से चलने वाले उनके जीवन में सहसा परिवर्तन उपस्थित हुआ। किसी के रूप दर्शन की स्मृति बार बार उनके हृदय में खटक्ती है। इन्हीं रचनाओं में प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध स्थापित होता है। इसके उपरान्त उनके हृदय को वैराग्य की ओर झुंटे देखते हैं। यहाँ चिन्तन का प्रवेश होता है। इस मायात्मक जगत् में विरक्ति उत्पन्न करना साधकों का लक्ष्य रहा है। महादेवी जी ने भी कहा है - "सो यह है माया का देश"। संसार की अस्थिरता, चाण भंगुरता, निष्ठुरता, निर्ममता, उसके स्वार्थ और विश्वासघात का प्रतिपादन भी है। "नीहार" में वैराग्यवान् होने के साथ स्कान्त की प्रेमिका भी वे लगती हैं। प्रकृति भी उन्हें ब्रह्म के लिए व्याकुल दिसाई देती है। यही तक नहीं, वह चल भी प्रकृति से छेड़ खाई करता प्रतीत होता है। अतः महादेवी जी सोचती ही रह जाती हैं कि जो मन में रिपा बैठा है वह बाहर कैसे शराबत करता फिरता है -

घूँघट पट से भाँके हुनाले  
 अरुणा के बारूत कपोल  
 जिसकी चाह तुम्हें है उसने  
 झिड़की मुँह पर लाली धोल ।  
 वे मँधर- सी लोल हिलोरे ,  
 फैला अपने अचल अक्षर ,  
 कह जाती " उस पार बुलाता "  
 है हमको तेरा कितना ?  
 यह कैसी झलना निमेष  
 कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार ।  
 तुम मन में हो छिपे  
 मुँह भटकता है सारा संसार । "

इस प्रकार 'नीहार' में 'प्रियतम, पृथक् ,  
 प्रिया पृथक् और प्रकृति पृथक् है। प्रियतम को अज्ञात करते हुए भी इस तथ्य की  
 उपलब्धि इस ग्रन्थ में अवश्य हुई है कि उन्होंने अपने प्रियतम को सबका "राक्षसी"  
 माना है। यही से अद्वैतवाद का बृद्ध आधार उन्हें मिलता है।

निष्कर्षों रूप में कह सकते हैं कि श्रीमती महादेवी  
 वात्मा की गायिका होते हुए भी जीवन की व्यास्था है। जीवन और मृत्यु के  
 दो बूलों के भीतर व्यथा की सरिता बहाकर उन्होंने सनातन दिव्य गान को  
 गुनगुनाया है- "न प्रेमी मुक्ति चाहता है, न भक्त और रहस्यवादी। ये तीनों  
 अनासक्त रह कर आसक्त रहते हैं, उन्होंने जन्म और मृत्यु की लोरियों पर  
 सप्रे सुख- दुःख की बानीर- तीलियों से बने मूले पर अपने सुमार प्राण शिशु  
 को लोरी देकर फुलाया है। इसी कहीं जैत बाजाता है। ऐसी वाजंका भ्रम है-

में उमिं विरल

तू तुंग अचल वह सिंधु अतल ,

बाधे दोनों को मैं चल चल ,

धो रही दैत के सौ कैतव । "

इस असीम गगन में विहार करने वाली आत्मा की इस विहंगी ने हमारी धरित्री की धूलि को महत्ता प्रदान की है । उसकी इस उदार कोर की तरलता को हम विस्मय ही नहीं, स्नेह की दृष्टि से भी देखते हैं । यथा-

मेरे ओ विहंग से गान

नभ अपरिमित में भले ही ,

पंच का साथी सबेरा ,

सौज का पर अंत है यह,

तृण कणों का लघु बसेरा ?

तुम उड़ो ले धूलि का

करुणा सजल वरदान ।।

इसमें कोई सन्देश की गुंजाइश नहीं कि महादेवी जी का काव्य कल्पना की उत्कृष्ट उड़ान और भावों की मर्मस्पर्शिंगी अगम गहराई एवं गंभीर विचारों से ओत प्रोत है ।

### “ यात्रा ” में प्रकृति चित्रण

केतना के उदय काल से ही प्रकृति तथा मानव का अनिच्छित सम्बन्ध रहा है। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा वातावरण ने अभिभूत मानव की खोजनाएँ - साहित्य और कला का मूल बनीं। प्रकृति ने भस्कर तथा कठोर रूप से भयभीत मानव आत्मरक्षा तथा परीर पुत्र के लिए वास्तु पुत्र तो वैज्ञानिक आविष्कारों तथा सामाजिक संघटन का आधार हुआ। प्रकृति की परिवर्तनीयता अथवा सम्मोहन शक्ति ने मानव को दार्शनिक अथवा तत्त्वज्ञानी बनाकर, ससीम से असीम, अज्ञ से सर्वज्ञ बनने को प्रवृत्त किया। जीवन की सुख-दुःखःशात्मक अनुभूतियों को जन्म दिया, विकासोन्मुखी बनाकर पूर्णता का पथ प्रशस्त किया। वस्तुतः प्रकृति जीवन की प्रेरक वाता अथवा संचालिका शक्ति मानी जा सकती है।

कवि साधारण मानव से अधिक जीवनशील होता है, यही कारण है कि कविता उद्गम प्रकृति के वातावरण में ही हुआ। उनके प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा अथवा स्तुति ने फिर उत्तम साहित्य की दृष्टि की उसकी अद्भुत परम्परा आज तक अबाध गति से चली आ रही है। महादेवी जी उस परम्परा का गौरवशाली रत्न हैं। वे तो कायावादी युग के सभी कवियों में प्रकृति का जो गौरवशाली चित्रण किया है वही समग्र तो शताब्दियों के पश्चात् दिखाई दिया है। किन्तु महादेवी जी का महत्त्व इसलिए बढ़ गया है क्योंकि उन्होंने प्रकृति को अपने चिन्तन तथा चित्रण से एक विशेष आधार दिया है। उनके शब्दों में -

“ कायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से विम्व-प्रतिविम्व के रूप में चल रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ सकती थी। ”

अतः महादेवी वर्मा के प्रकृति चित्रण का अध्ययन करने से पूर्व इसकी पृष्ठभूमि, स्वरूप आदि का अध्ययन समीचीन होगा।

सामान्य रूप से प्रकृति का मानव से दो प्रकार का सम्बन्ध होता है- उपयोगिता तथा सौन्दर्य। प्रकृति के स्थूल स्वरूप को अपनी तर्कबुद्धि से ग्रहण करने वाला दार्शनिक उसके महत्व, जीवन तथा स्थिति के विषय में विचार करते करते उसमें ही परिवर्तनशीलता, चाण भंगुरता, तथा उसके पीछे एक नियामक शक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है। वैज्ञानिक भी प्रकृति के स्थूल रूप को लेकर अपनी विश्लेषण शक्ति से उसकी उपयोगिता, लाभ-हानि आदि पर विचार करता हुआ अन्त में उसके सूक्ष्म अणु तत्व तक पहुँच जाता है, किन्तु ये दोनों प्राकृतिक सौन्दर्य की अखण्डता से विलुप्त हो रहे हैं। साहित्यकार बौद्धिक तर्कों में सौन्दर्य को सण्डों में विभाजित करके नहीं देखता, वह तो अस्त व्यस्त, बिखरे हुए सण्ड-सण्ड में विकीर्ण सौन्दर्य की सामूहिकता का आभास पाकर उसे ही अपने हृदय के उद्भूत रस में पागल कर नवीन चित्र सृष्टि करता है। कवि व्यापक सौन्दर्य में विश्व सौन्दर्य की सत्ता प्रति-ष्ठित करता है।

धर्मप्राण भारत में सौन्दर्य की स्थूलता को महत्व न देकर उसकी सूक्ष्म सत्ता को ही प्राथमिकता दी है। यहाँ काव्य के लिए दर्शन का आधार ही उत्तम माना गया है। अनादि काल से भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा साहित्य का प्रकृति से अटूट सम्बन्ध चला आ रहा है। भारतवर्ष का प्राकृतिक वैभव, इसका प्रमुख कारण है। प्रकृति नटी की क्रीड़ा स्थली भारत की "सुखता सुफला शस्य श्यामला" पृथ्वी के अंक में, गलय समीर के फोंकों में झूलती हुई, मुस्कराती नदियों की तरंग-भंगिमा में गति मिलाकर, उन्मुक्त आकाशचारी विहंगों के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर मनुष्य ने जिस जीवन का निर्माण किया, जिस कल्पना और भावना को विस्तार दिया, जिस सामूहिक चेतना का प्रसार किया और जिन अनुभूतियों की अभिव्यञ्जना की उसके संस्कार इतने गहरे

थे कि भीषण रक्तपात और उथल फुथल में भी वे अक्षुरित होने की प्रतीक्षा में धूल में दबे बीज के समान छिपे रहे, कभी नष्ट नहीं हुए । ”

भारतीय साहित्य और परम्परा का अध्ययन करने पर महादेवी जी की उपरोक्त धारणा पूर्णतया सत्य सिद्ध होती है । वेदकालीन मनीषी प्रकृति को अजर सौन्दर्य और अजर शक्ति का ऐसा प्रतीक मानते थे, जिसके बिना जीवन की गति स्वस्थ नहीं हो सकती । यही विश्वास प्रकृति वाद तथा बाद में सर्ववाद कहलाया ।

महादेवी जी का विचार है कि ” प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप कल्पनाओं की समृद्धि, स्वानुभूत सुख दुःखों की अभिव्यक्ति इस काव्य की ऐसी विशेषताएँ हैं जो परम्पर सापेक्ष रहेंगी । ” उन्होंने ” यामा ” में ” अपनी बात ” में लिखा है -

” लायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीनकाल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी । लायावाद की प्रकृति घट, बूझ यादों में भरे जल की स्वरूपा के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई । अतः अब मनुष्य के अक्षु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओर बिन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु- वृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलार्थ, अस्थिर जल और स्थिर फल, निविड़ बन्धकार और उज्ज्वल विद्युत्- रेखा , मानव की लघुता- विशालता, कोमलता- कठोरता, चंचलता- निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेकरूपा में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तार्तम्य सौजने का प्रयास किया, जिसका एक ओर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक

अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा ।<sup>१</sup> ”

इससे स्पष्ट है कि महादेवी जी एक ओर प्रकृति में उस विराट् की छाया देखती हैं और दूसरी ओर अपनी काया भी देखती हैं । महादेवी ही नहीं, हिन्दी के कायावाद के सभी प्रमुख कवियों में ऐसा ही दिशा है । प्रकृति इस प्रकार कवि के हृदय से भिन्न नहीं रह जाती, वह उसी के जीवन का अंश बनकर सम्मुख आती है। इसे यदि हम चाहें तो प्रकृति से तादात्म्य की संज्ञा दे सकते हैं। महादेवी जी के काव्य में यह प्रकृति विशेष रूप से मिलती है । एक कविता में वे संध्या से अपनी तुलना करती हुई कहती हैं -

” प्रिय संध्य गगन, मेरा जीवन ।

यह चित्तिज बना धुंधला विराग,

नव वरुणा वरुणा मेरा सुहाग,

छाया सी काया वीतराग,

सुधि भीने स्वप्न रंगिनि का

साधों का वाज चुनहला फन ,

घिरता विषाद का तिमिर गहन

संध्या का नमस् से मूक मिलन-

यह अमृती हँसती चितवन ।। ” २

अर्थात् संध्या का आकाश ही मेरा जीवन है। धूमिल चित्तिज वैराग्य है, लालिमामय सूर्य मेरा सुहाग है, संध्या की काया मेरी वाक्यार्णवरश्मि काया है , रंग- विरगे बादल स्मृतिमय स्वप्न हैं, चुनहलाफन मेरी साधें हैं, गहन अन्धकार उमड़ता हुआ विषाद है और संध्या का आकाश से मूक-मिलन मेरी

१- यामा - 'अपनी बात' पृ० ६

२- यामा पृ० १०३

अधुपूर्ण हँसती हुई दृष्टि है। पूरी कविता में अपने जीवन की लाया संख्या के आकाश में प्रतिबिम्बित है।

इसी प्रकार 'मैं' बनी मधुमास वाली<sup>१</sup>, 'मैं' नीर मरी दुख की बदली<sup>२</sup>, 'वि०' विरह का जलजात जीवन<sup>३</sup>, 'मैं' गत सी नीरव व्यथा तम सी अगम तेरी कहानी<sup>४</sup> "लादि कविताओं में उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है। कभी कभी वे तादात्म्य के लिए विरोधी तत्त्वों को लेकर भी अपना काम चलाती हैं। ऐसी कविताओं में वे अपनी विशलाता और अभावहीनता का परिचय देती हैं। उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

" जग करुणा, सं०<sup>५</sup> करुणा, मैं मधुर-मधुर  
दोनों मिलकर देते रजकण

चिर करुणा मधुर,

सुन्दर सुन्दर ॥

जग फाभर का नीरव रसाल,

पहने हिमजल की अकुमाल,

मैं फिक्र बन जाती डाल-डाल

सुन फूल फूल उठते पल-पल

सुख दुख मंजरियों के अंकुर ॥ " ५

प्रकृति से अधिक सुखी और वैभवशालिनी कवि की आत्मा किस प्रकार प्रकृति को सौन्दर्य और शृंगार से युक्त बनाती है, यह

१- यामा- पृ० १४७

२- ,, पृ० २११

३- ,, पृ० १३०

४- ,, पृ० ३६

५- ,, पृ० १२२



इस कविता में द्रष्टव्य है ।

महादेवी जी ने दूसरे रूप में प्रकृति का उपयोग उसका मानवीकरण करके किया है। यह प्रकृति अग्नि की देन है, ऐसा माना जाता है, पर महादेवी जी ने इसका स्रष्टन करते हुए देवों में उद्या, मरुत् , अग्नि आदि के सम्बन्ध में लिखी गई कथाओं में मानवीकरण की प्रकृति देस कर उसे अपनी ही वस्तु माना है। जो कुछ भी हो , मानवीकरण महादेवी जी के प्रकृति वर्णन की दूसरी विशेषता है। यों तो प्रकृति सजीव है और स्थान-स्थान पर उसके ऐसे चित्र मिल सकते हैं, परन्तु कुछ कविताएँ तो ऐसी हैं, जो हिन्दी की अनुपम निधि कही जा सकती हैं। नीचे दो चित्र दिये जा रहे हैं । एक चित्र तो वसन्त की मधुरिमामयी रात्रि का है और दूसरा वर्षा का है । दोनों में नारी के दो रूपों की मध्य भाँकी है :

धीरे धीरे उतर छातिज से  
आ वसन्त रजनी ।  
तारकमय नव वैष्णी बन्धन ,  
शीश फूल सजि का कर नूतन ,  
रश्मि बलय, सितधन अवगुण्ठन ,  
मुक्ताहल लमिराम विशादे  
चितवन से अपनी  
पुलकती आ वसन्त रजनी ॥ १

००      ००      ००

रपसि तेरा धन-केश- पाश ।  
श्यामल श्यामल, कोमल कोमल ,

लहराता सुरमित केश- पाश ।  
 सौरभ मीना, फीना गीला ,  
 लिपटा मृदु अँजन-सा दुदूल ,  
 चल अँवल से फर फर फरते  
 पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल ,  
 दीप्क से देता बार बार  
 तेरा उज्ज्वल कितवन विलास  
 रूपसि तेरा घन-केश-पाश ॥ १

महादेवी जी के मानवीकरण में प्राकृतिक वस्तुएँ ही नहीं, कमी कमी विराट् प्रकृति भी बंध जाती है। महादेवी जी ने एक कविता में उस विराट् सत्ता को- परम तत्त्व को अप्सरा का रूप दिया है। उसमें प्रकाश और अन्धकार को उसका सफेद और काला वस्त्र, सागर गर्जन को मंजीरों की रुनफुन , फंफा को अलक जाल , मेघों की ध्वनि को किंकिणी का स्वर, रवि- शिश को चंचल कुण्डल, तारों को मांग के लमील मीती , जपला को विभ्रम, इन्द्रधनुष को स्मिति , और हिमकणों को स्वेद बिन्दु का रूप दिया है। यथा-

लय गीत मंदिर, गति ताल अमर  
 अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर  
 बालीक तिमिर सित अस्ति चीर  
 सागर गर्जन रुनफुन मंजीर  
 उड़ता फंफा में अलक जाल  
 मेघों में मुखरित किंकिणी स्वर  
 अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर  
 रवि शशि तेरे अवतंस लील ,

सीमन्त जटित तारक अमोल ,  
चपला विभ्रम, स्मिति हृन्धनुषा ,  
हिम कण वन करते स्वेद निकर  
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ॥ १

इस मानवीकरण में जैसे विराट प्रकृति के ही  
अंग रूप प्रकृति के समस्त उपादान बताये गये हैं, उसी प्रकार कहीं कहीं उन्होंने  
वफा अंग भी प्रकृति को कहा है-

“ मेरी निश्वासों से बहती रहती फफावात,  
आँसू में दिनरात प्रलय के घन करते उत्पात  
कसक में विधुत अन्तर्धान ॥ २

इसमें पता चलता है कि प्रकृति उनके आराध्य  
का भी प्रतिबिम्ब है और उनका भी । ऐसी स्थिति में वे अपने प्रियतम से  
कभी भिन्न कैसे रह सकती हैं ? इस अभिन्नता के अनुभव के कारण ही वे कभी-  
कभी प्रकृति के उफारणों से शृंगार करके अपने को प्रियतम के प्रति समर्पित करने  
की तैयारी करती दिखाई देती हैं-

“ रंजित कर दे यह शिथिल चरण,  
ले नव अशोक का लरुणा राग  
मेरे मण्डन को आज मधुर  
ला रजनी गंधा का पराग ॥  
यूथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कवरी खार ।  
पाटल के सुरभित रंगों से  
रंग दे रसना में अलि गुंजन

---

१- यामा - महादेवी पृ० १६५

२- ,, पृ० १७६

से प्रेरित करते बहुत- फूल ,

रजनी से कर्जन मार्ग सजनि दे भरे वलक्षित नयन सार । १

उनके रहस्यवाद की कोमलता का कारण यही प्रकृति है । ' लार कौन सदेश नर धन ' या ' मुसकाता सकेल भरा नम अलि क्या प्रिय जाने वाले हैं ' तथा ऐसे प्रकृति की सुषमा उन्हें प्रियतम का सदेश देने वाली जान पहुँचती है। परन्तु कभी कभी प्रकृति उन्हें उपदेश देती हुई भी दिखाई देती है । ' बाहुओं के देश में ' शीर्षक गीत में फारसा हुआ हमन , निश्चल तृण, बेसुध कोकिल और प्यासी चातकी अपनी सूझा और मानसिक स्थिति से उस जीवन की व्यथा का सूक्त कर जाते हैं, जो दिवस भी अपने अमिट सदेश में नहीं कह पाया था ।

महादेवी के अधिकांश प्रकृति के चित्र उनके अपने भावों के ही प्रतिबिम्ब हैं। परन्तु कहीं कहीं स्वतन्त्र दृश्य चित्रण भी उन्होंने किया है।

बाल्यकालिक रूप में महादेवी जी ने अन्य कवियों की भाँति ही उपमान ग्रहण किए हैं। उनके उपमान अधिकतर वसन्त और पावस दो ऋतुओं से लिए गए हैं। साधना पथ पर बढ़ते हुए साधक की बाँसों में बाँसू और बाँठों पर मुसकान दो ही खल रूप फलार्थ होते हैं। पावस बाँसू में सम्बद्ध है और वसन्त मुसकान से। रंग भी उज्ज्वल और काला विशेष रूप से आये हैं। इन ऋतुओं से सम्बन्धित पक्षियों में भ्रमर, चातक, मयूर, कोकिल, चकोर आदि विशेष रूप से आये हैं। फूलों में कमल, हरमिगार और गुलाब का उल्लेख बहुत हुआ है। वैसे नीहार, रश्मि, नीरखा, साय्यगति इन क्रमशः प्रकाशित ग्रंथों में कोई ऐसा समय नहीं, जिसका वर्णन उनकी कविता में न हो। रागर, फूली

और आकाश तीनों के उफारणों का प्रयोग करने में वे चिन्तहस्त हैं। कान्त और पावस में इनकी बदलती हुई रूपा का दिग्दर्शन उन्होंने बार बार कराया है।

प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर खिंच कर लेने वाली सहचरी है, उसकी वात्मा की जाया है, ब्रह्म की जाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य का है। अपने कहीम की ओर बढ़ती हुई महादेवी प्रकृति के कण कण से परिचित होती हुई बागे बढ़ी हैं, और सबका ब्रन्दन पहचान कर आखिस्त सी हो गई हैं। उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी। इसका कारण स्वयं उन्होंने बता दिया है, जो उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए किसी प्रकार भी दिम्पणी की आवश्यकता नहीं।

जड़ चेतन के बिना विकासशून्य है और चेतन जड़ के बिना आकाश शून्य। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी 'वाद' के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो, चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उनके समूह्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है। यथा-

“ शून्य से टकरा कर सुकुमार  
करेगी पीड़ा हाहाकार ,  
बिखर कर कन कन में ही व्याप्त  
मेघ बन जा लेगी संसार ॥ ” १

आरम्भ में जैसा जीवन के प्रति उनकी दृष्टि

विस्मय भरी थी वैसी ही प्रकृति के प्रति भी थी। वे तीक्ष्ण सादे दृश्य चित्रण में ही संतुष्ट हो जाती थीं कबला प्रकृति की सुख-दुःखमयी स्थिति से प्रसन्न या विषादमग्न हो जाती थीं। उनकी वृत्ति तटस्थ दर्शन की थी, लेकिन धीरे धीरे वे उसके भीतर डूबती गईं और प्रकृति उनकी अनुभूति का अंग बन गई है। यही कारण है कि "साध्य गीत" के अधिकांश गीतों में प्रकृति अनुभूति का अंग बन कर ही आई है।

दुःख और निराशा, निरह और विकल्ता, त्याग और सहिष्णुता उनके जीवन में बड़ी प्रभाव से आते हैं, जिनके लिए प्रकृति से भी वे प्रेरणा पाती हैं। दुःख के सुख परिणाम की सम्बन्धिता निम्न पंक्तियों में कितनी कुशलता से हुई है -

जब मेरे शूलों पर शत-शत,  
मधु के युग होंगे अवलम्बित,  
मेरे कन्धन से वातप के  
दिन सावन हरियाली होंगे  
तब चाण चाण मधु प्याले होंगे ? १

अपने दुःख में भी, अभाव में भी वे कोई ऐसी बात नहीं देखतीं, जिसके लिए वे संतापित हों। वे अपनी हीनता में भी केवल यही वरदान चाहती हैं-

घन बरूँ वर दो मुझे प्रिय।  
जलधि-मानस से नव जन्म पा,  
सुभग तेरे ही दृग व्योम में,  
सजल श्यामल मथुर मूक-सा।

तरल अश्रु विनिर्मित गात ले  
 नित धिक् भर-भर मिट्ट प्रिय  
 धन बरुं वर दो मुझे प्रिय । १

इस प्रकार प्रकृति ने उनके भावपूर्ण का ही नहीं, कला पक्ष का भी शृंगार किया। प्रतीकों द्वारा व्यंजना तो और कवियों ने भी की है, पर उसे अपने जीवन दर्शन- एपीम का एपीम के तादात्म्य- के लिए प्रकृति को माध्यम बनाना उनकी अपनी विशेषता है। उनके काव्य में प्रकृति इतनी घुल मिल गई है कि उसे विश्लेषण के लिए अलग करके देखना भी कठिन है। हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी ने प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूत अभिव्यक्ति दी है और विराट् की प्रमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है।

महादेवी जी ने अपने ही व्यथित अन्तर्मन को व्यक्त किया है। प्रिय के विवाह में हृदय दिन रात दीफ की तरह जलता रहता है। हृदय से आँसुओं की घटार उमड़ उमड़ कर उठ रही हैं और दीर्घ निश्वासों के प्रलयानिल चल रहे हैं। आँसु पृथ्वी को गीला कर रही हैं। कण्ठ की शरीर सिहर उठता है और स्नेह में स्पर्श भर जाता है। किसनी सुषीबते हैं ? आँसुओं के बादलों से, निश्वास के प्रमर्जन से और मरकर सकाकीर्ण से झुकता हुआ भी प्रेम प्रदीप जल रहा है और जलता ही रहेगा, किन्तु सच यही है कि प्रियतम से मिलन की कामना विफल हो गई और अब मर मरकर जीना पड़ रहा है। मातूम नहीं होता यह अभिशाप है या वरदान, यह स्थिति मिलन की कथा है या विरह की अमिट कहानी ?

चाहा था तुझ में मिटना भर  
 वे डाला बनना मिट मिट कर ।

यह अभिशाप दिया है या वर  
 पहली मिलन कथा हूँ या मैं  
 चिर विरह कहानी ॥ १

इसमें विरहिणी के हृदयोद्गारों का परिचय मिलता है। उसकी आशा के विफल हो जाने पर हृदय कितना दग्ध हुआ होगा यह विरही हृदय ही जान सकता है, किन्तु फिर भी प्रतीक्षा में वह लीन है, यह उसके दृढ़ प्रेम की अमिट निशानी है। मुसीबतों से झुकना उसके अनुराग का धोतक है। मिलन और वियोग में अमद उसके प्रेमी हृदय की तल्लीनता का प्रमाण है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में प्रकृति चित्रण की जितनी भी प्रमुख प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं, वे सभी महादेवी जी के काव्य में उपलब्ध तो होती है साथ ही भाषा की सुकुमारता, भावों की मनोरमता, कल्पना की कोमलता शब्द चयन की समीचीनता, उनकी ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता तथा अलंकारों की योजना ने प्रकृति वर्णन को सुन्दर सरस और सजीव सा बना दिया है। इस दृष्टि से महादेवी जी का प्रकृति-वर्णन अपने समसामयिक कवियों के प्रकृति चित्रों की समान कोटि का ही है।

000



### महादेवी जी का प्रेम- निरूपण

महादेवी जी के काव्य कानन में अन्तःसलिला के समान प्रेम धारा प्रवाहित मिलती है। उनके काव्य में जो वेदनामय सरलता और माधुर्यमय रहस्यवाद है, वह प्रेम भाव से सम्पृक्त होने के कारण हिन्दी कविता के लिए एक नूतन योगदान है। प्रकृति चित्रण उनकी सहज विशेषता है। काव्य की संगीतमयता ने सचमुच उसमें चार चांद लगाने का कार्य किया है, जिसमें प्रेम की सरलता और भी बढ़ी हुई सी प्रतीत होती है। महादेवी का प्रेम प्रायः गूढ़ है। उसे लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में ग्रहण किया जा सकता है। वह अपने दार्शनिक परिवेश में अलौकिक और व्यावहारिक संघर्ष में लौकिक प्रतीत होता है। अतः उसे लौकिक ही कहना उचित नहीं, और साकेतिक भूमिका में तो वह अलौकिक है ही, इसी से यह रहस्यमय है। यही महादेवी के रहस्यवाद की साहित्यिक पीठका है।

प्रेम अथवा राग तत्त्व कलाओं का मूलभाव है। राग का ही एक रूप शृंगार है। इसी भाव का आभास अधिकतर कविता में उपलब्ध होता है। महाकाव्य हो, चाहे आत्माभिव्यक्ति की स्फुट कविता हो, कवि के अन्तर का राग अपने आप अभिव्यक्त हो जाता है।

आत्माभिव्यक्ति की कविता का स्वच्छन्द भावा-  
वेग मिलता है। उसमें उसके आन्तरिक अनुराग की सहज, सरल अनुभूति उपलब्ध होती है। ऐसी कविता अधिकांश में प्रेम काव्य में ही होती है। महादेवी जी की कविता आत्माभिव्यक्ति का स्फुट रूप है।

मानव अन्दर की प्रेम भावना, भावना के स्तर पर पार्थिव एवं अपार्थिव दो रूपों में दृष्टिगत होता है। वस्तुतः ये रूप तात्त्विक

भेद का नहीं, केवल व्यावहारिक अन्तर का आस्थान करते हैं। स्व की भावना स्व स्तर स्व सीमा में पार्थिव हो जाती है और दूरे परविश में अपार्थिव ।

### पार्थिव प्रेम

सामान्यतया पार्थिव स्तर का प्रेम शारीरिक अनुभूति से युक्त होने के कारण किसी पार्थिव व्यक्तित्व के प्रति सहज वाचना-मूलक प्रेम है। ऐसे प्रेम का आलम्बन शरीर रूपधारी कोई मानव ही हो सकता है । हिन्दी साहित्य में नायक - नायिका इत्यादि के रूपों में पार्थिव आलम्बनों के प्रति अनेक कवियों ने अपनी भावना व्यक्त की है। विद्यापति , देव विहारी स्व श्यामावादी कवियों के वैयक्तिक प्रेम काव्य का आलम्बन ऐसा ही है । प्रेम गीतों के रचयिता अपनी कल्पना के समस्त किसी की पार्थिव मूर्ति रखकर ही उसके प्रति अपना भावार्पण करते हैं।

पार्थिव प्रेम के अन्तर्गत ही स्व दूरात स्वरूप वह है जिसमें आलम्बन की पार्थिवता तो समान है, किन्तु प्रमोदगार सहज वाचना से भिन्न सात्त्विक होते हैं। यहाँ आकर्षण शारीरिक नहीं आसरीरी को जाता है स्व कवि अपने अन्तरसाधना तथा अपने संयम अथवा त्याग आदि के आधार पर प्रेम के शारीरिक अंश का विरोध करके उसे शुद्ध राग में परिणत कर देता है। इसे पार्थिव प्रेम का सात्त्विक स्वरूप कह सकते हैं।

### अपार्थिव प्रेम

अपार्थिव अथवा अलौकिक प्रेम के कई स्वरूप हैं। वस्तुतः इस कोटि के प्रेम में भाव-वैविध्य के लिये बहुत अधिक स्थान है। तुलसी ने ठीक ही कहा है-

‘जाकी रही भावना जैसी ।

प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥’

## प्रेम का वर्गीकरण

महादेवी जी के काव्य में प्रेमधारा मूलतः एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रवाहित हुई है। सुगमता के लिए उसे हम चार कोटियों में रख सकते हैं। एक वह जो किसी लौकिक आलम्बन को लेकर चलती है, जहाँ संकल्पात्मक संयोग और वियोग के अक्षर आते हैं, प्रिय का हृन्मन मन को चौंकाता है। जीवन सूनेपन से भर गया है। दृग-पुलिनों पर, करुणा की लहरों में बह बह कर आँसू के मोती कलकते आते हैं। कभी कभी वे स्वयं " मैं बनी मधुमास वाली ; मधुमास बन जाती है "। स्वप्न में प्रिय का चिन्तन जब प्राणों में गुदगुदी पैदा कर जाता है, तभी वे इस तथ्य की सत्यता को जान पाती हैं कि नील नभ में सस्मित सुधाकर को देखकर सहज ही ऊर्ध्व तरंगे उमड़ती हैं, उसकी किरणों के स्पर्श से चन्द्रकान्ता मणि पिघल उठती है। काले मेघों की भीड़ को देख कर अशिशवक स्वभावतः भ्रान्त हो उठता है, किन्तु जब उनकी आँखें आँसुओं से भर जाती हैं तो भ्रम भी उनको रोंते हुए, रात बीस के मिस आँसुओं की वज्रां करती प्रतीत होती है।

१- " कैसे कहती हो सप्ता है वलि उस मूक मिलन की बात ।

भरे हुए अब भी कलियों में भरे आँसू उनके हास ॥ - यामा पृ० ३

२- " जीवन की ललितता दुस फतफर ।

गर स्वप्न के पीत पात फर ॥ - यामा पृ० २४८

३- यामा- महादेवी पृ० १६६

४- " " " पृ० १५८

५- " " " पृ० १२१

६- " " " पृ० १२०

प्रेम की द्वितीय अवस्था अलौकिक है, जहाँ प्रेम-भावना का प्राणित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र में वाकर विष्णु भी अमृत का कार्य करता है। यथा-

“ जहाँ विष्णु देता है अमरत्व  
जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत  
जहाँ हैं नयनों का शृंगार  
जहाँ धाला बनती नवनीत  
मृत्यु बन जाती नव जीवन ।।  
वहीं रहता नीरव भाषण ।

नहीं जिसमें अनन्त चिच्छिद  
बुझा पाता जीवन की प्यास,  
करुणा नयनों का संक्षिप्त मौन  
सुनाता कुरु क्षीत की बात,  
प्रतीक्षा बन जाती अर्जन  
वहीं मिलता नीरव भाषण ।। १

पीड़ा ही सर्वस्व बन जाती है। वास्तु ही नेत्रों का शृंगार करते हैं, प्रतीक्षा नयनों की अर्जन बन जाती है। वेदना संजीवन हो जाती है। पीड़ा ही प्रेम-पथिक का पाथय बनती है। यही रहस्यवाद की अवस्था है, जिसमें भावों का विनिमय, इच्छाओं का संयोग और कामनाओं का योग होता है। इस स्थल पर महादेवी जी की विरही आत्मा को पीर भी प्रिय से कम मादक प्रतीत

१- यामा- महादेवी पृ० ५८

२- ,, पृ० ५८

३- “ प्रिय से कम मादक पीर नहीं ” - यामा पृ० ६५

४- यामा पृ० ६५

नहीं होती । उनका प्रेम चातक<sup>१</sup> और चकोर की तरह विशुद्ध है। उनके प्रिय<sup>२</sup> तारिकाओं की टकटकी और उच्छ्वास<sup>३</sup> बनकर आते हैं। प्रिय से मानसिक मिलन भी होता है किन्तु इस मानसिक संयोग के अवसर चाणिक हैं । उनका जीवन तो फिर ' विरह का जल्लात ' ही बन जाता है। पीड़ा के बाधिका के कारण अपने को ' नीरु भरी दुख की बदली ' ही कह उन्ती है, जो वस्तुतः अधतन सार्थक उक्ति है।

महादेवी के प्रेम की तीसरी कोटि रागातृणा-  
मक्ति है। इस मक्ति में मंदिर भी है, और प्रतिमा भी, साधक है और राज्य भी । पूजा के सभी उपकरण हैं किन्तु विशेषता रही है कि ये उपकरण अभी-  
तिक है । समय आगे बढ़ चुका है। पूजा और अर्चन की यद्यपि आवश्यकता नहीं  
फिर भी उनको एक बदला हुआ रूप देने की चेष्टा की है । कवयित्री का  
जीवन ( शरीर ) ही प्रियतम का मंदिर है। उनके गीत नयन प्रिय की आरती  
उतारते हैं । पीड़ा और पुलकित रोम राजि चन्द स्व अन्त बन जाती है ।  
उनके स्पन्दव ( स्वास ) ही धूप बत्ती बनकर जला करते हैं। मंदिर के द्वार की  
शोभा को वेदना का बन्दनवार डिगुणित कर रहा है। कितनी विलक्षण विधि  
है यह पूजा की ।

१- मतवाले चकोर से सीखी कभी, उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं ।

- यामा पृ० ६५

२- ' वे तारक वालाओं की , अपलक चितवन बन आते ।।

- यामा पृ० ११०

३- उस घने पथ में अपने पैरों की चाप रिपाये ।

मेरे नीरव मानस में वे धीरे धीरे आये ।। - यामा पृ० ६०

४- क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस वसीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे ।। - यामा पृ० १६२

५- स्वासों में सफे कर गुम्फित, बन्दनवार वेदना- चर्चित ,

भर दुख से जीवन का घट नित, मूक जाणों में मधुर भरणी भारती ।।

- यामा पृ० २०४

प्रेम की चतुर्थ कौटि सामान्य है- यहाँ उनका प्रेम परिवार, पुरजन , परिजनों के सम्बन्ध सूत्र से आवृत होता हुआ भी अपनी इस परिधि में मानव मात्र के प्रेम को समाहित कर लेता है। यह प्रकृति प्रेम का ही निदर्शन है कि महादेवी ने प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन , मानवीकरण , सहचरी दूती, अभिसारिका आदि रूपों में चित्रित किया है । कवयित्री का प्रेम, देशानुराग के रूप में भी व्यक्त हुआ है।

प्रेम प्रवृत्ति निरूपण

कविता , कवि के भावातिरेकमय चणों का  
अव्यय प्रोत है। प्रत्येक कवि के अपने भाव ही, विशेषतः सुक्तक गीतों में ,  
स्पन्दित होते हैं। महादेवी के गीत भी उनका ' आत्मनिवेदन ' मात्र हैं ।  
उन्होंने वर्तमान कवियों की काव्य रचना सम्बन्धी मनोदशा की ओर लक्ष्य करके  
कहा है ' आज हमारा हृदय ही हमारा संसार है, हम अपनी प्रत्येक रास का  
इतिहास लिखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कम्पन को व्यक्त करने के लिए उत्सुक  
हैं, और प्रत्येक स्वप्न का मुख्य पाने के लिए विवश हैं । यथा-

“ ऐसा तेरा लोक, वेदना  
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद ,  
जलना जाना नहीं, नहीं  
जिसने जाना मिटने का स्वाद ॥

0                      0

क्या अमरों का लोक मिलेगा  
तेरी करुणा का उपहार ?  
रहने दो हे देव । और  
यह मेरा मिटने का अधिकार ॥ ” २

१- यामा- महादेवी ( भूमिका ) पृ० १६

२-                      , ,                      पृ० ७

यह कथन कवयित्री के समसामयिक कवियों के लिए जितना ही समीचीन है उतना ही स्वयं उनके लिए भी है। अतः उनके काव्य में उन्हीं के जीवन की सुख दुःखमयी घटनाएँ ही वाणी के परिधान में प्रकट हुई हैं।

महादेवी जी ने अपने गीतों की विशेषता का उल्लेख करते हुए उनमें 'लौकिक' प्रेम की तीव्रता को भी स्थान दिया है। कविता में लौकिक प्रेम की तीव्रता अनुकरण और श्रवण द्वारा सम्भाव्य नहीं। स्वतः देवी जी ने इसे स्वीकार दिया है।

---

१- दृक्कते आसूँ सा सुकुमार

विसरते सपनों सा अज्ञात

चुराकर अरुणा का सिन्दूर

मुस्कराया जब मेरा प्रातः,

छिपाकर लाली में चुप चाप

सुनहला प्याला लाया कौन ?

०

०

०

हँस उठे कूकर टूटे तार

प्राण में मँडराया उन्माद

व्यथा मीठी लै प्यारी प्यार

सो गया केतुप अन्तर्नाद

घूट में धी साकी की राध

सुना फिर फिर जाता है कौन ?

- यामा पृ० ८

“ बालक अपना सधिय जीवन जिस प्रत्यक्ष और उसके अनुकरण से आरम्भ करता है, वही निरीक्षण और अनुकरण परम्परा मात्रा में चित्रकार के बंध में समाहित है, परन्तु यदि विचार कर देगा जाये तो कवि इन सीढ़ियों से ऊपर पहुँचा हुआ जान पड़ेगा, क्योंकि इन व्यापारों से उत्पन्न हुए दुःखमयी अनुभूति को यथार्थ व्यक्त कर देने की उत्प्रेक्षा उसका प्रथम पाठ है। जब तक इन लौकिक व्यापारों का जीवन में संवरण नहीं होता तब तक उनकी अनुभूति भी अनुभूति न होकर अनुकृति मात्र ही रहेगी। महादेवी जी के काव्य में जो लौकिक संयोग-वियोग की दशाईं दृष्टिगोचर होती हैं, वे निश्चय ही जीवन में संघटित घटनाओं से परिचालित रही होंगी। उनकी वेदना का मूल कारण बतलाते हुए दीनानाथ शरण के ये शब्द उपलब्ध ही प्रकट होते हैं -

“ मौलिक जीवन में जिसे पति का प्रेम नहीं मिला, उसके गीतों में वही अभाव अभिव्यक्त है। पीड़ा का वरदान उसी प्रिय का तो उपकार है। ” जै-  
 १

“ इन ललचाईं फल्कों पर  
 पहरा था जब ब्रीड़ा का,  
 साम्राज्य मुझ के डाला,  
 उस चितवन ने पीड़ा का ॥ ” २

इतना अवश्य माना जा सकता है कि प्रत्यक्षातः इस बात का उन्होंने समर्थन नहीं किया किन्तु अपराधी के अनर्गल प्रलाप जिस प्रकार उनके अपराध को खोल देते हैं उसी प्रकार महादेवी जी का यह परोक्षा कथन उपलब्ध कथन को प्रमाणित करता है, अपने विषय में कुछ कहना प्रायः कठिन हो जाता है, क्योंकि

१- आयावाद का विश्लेषण और अध्ययन - दीनानाथ शरण पृ० ५८

२- याना- महादेवी पृ० १०



अपने दोष देखना अपने आपको अप्रिय लगता है और उसको अनदेखा कर जाना औरों को।<sup>१</sup> महादेवी जी प्रिय की निष्पूरता पर रो उठती हैं। मैं कण कण में ढाल रही हूँ अलि आँसू के मिस प्यार किसी का।

यह तो प्रतीक शैली का प्रभाव है कि उसमें इस प्रकार की शब्द योजना की जाती है जहाँ दो अर्थ निकाले जा सकते हैं। इसी-लिए महादेवी जी का प्रेम गूढ़ है अन्यथा तो वे निजी अनुभूति के वर्णन के लिए ही प्रयत्नशील हैं। महादेवी जी ने भी अन्य कवियों की तरह संयोग और वियोग की दशाओं को इस प्रकार व्यक्त किया है जो कभी कभी उनके जीवन के संस्मरणों के ही वर्ण ही प्रतीत होती हैं। उनके संस्मृति के चित्रों और विरह के उद्गारों की कोई निश्चित रेखा प्रतीत नहीं होती, उनका केवल साकेतिक रूप में ही कथन है। किन्तु शब्दों का व्यामोहक जाल सत्य को आच्छन्न नहीं कर सकता। प्रेम की पिपासा कभी भी दो गिलास पानी पीकर शान्त नहीं की जा सकती। इसीलिए रहस्यवादी प्रेम कुछ विकृत हो गया है। 'यामा' की भूमिका में यह लिखते हुए - " इस काव्य धारा की अपार्थिव पार्थिवता और साधना की न्यूनता ने सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, अतः यदि इसका रूप कुछ विकृत होता जा रहा हो तो आश्चर्य की बात नहीं। महादेवी जी ने यह स्वीकार किया है कि उनके जीवन में साधना का अभाव है, अतः शब्द-जाल केवल वाक्-जाल मात्र है, कागज के फूल हैं जिनसे कभी दिव्य प्रेम की तो गन्ध भी नहीं आ सकती। अतः महादेवी जी का प्रेम, लौकिक साधारण प्रेम है, इस तथ्य के अस्वीकृति नहीं की जा सकती। किन्तु इस तथ्य के भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनका प्रेम अपार्थिव और अलौकिक बनकर रहस्यवाद की श्रेष्ठ भूमिका प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार महादेवी के लौकिक प्रेम की धारा

१- यामा- महादेवी ( भूमिका ) पृ० ११

२- " " " " पृ० ११

ही अलौकिक होती गई है। यौवन के तूफानी दिनों के प्रेम की क्राफतता ने ही काव्य को मधुमय पीछा से भर दिया है। इसलिए संभवतः इस पीछा का कारण बतलाती हुई शचीरानी गुट्ट का प्रकार कहती हैं-

“वेदना लौकिक प्रेम की मजबूत अनुभूति से उद्भूत है, और काव्यमय आवरण से लिपट कर रहस्यपूर्ण होती गई है।”

महादेवी जी के शब्दों में हम यह स्वीकार कर लें कि “त्रिया चरित्र जानना वैसे ही कठिन है, फिर भी उसमें जो विशेषता हो, उसकी गतिविधि का रहस्य समझने में कौन पुरुषा वर्ग को मक्ता है।” किन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि नारी कृदय के भावोल्लेखन में नारी शचीरानी गुट्ट के शब्द बहुत दूर ठीक हों। हाँ फिर महादेवी जी ने भी तो स्त्रीक रूप में यह स्वीकार कर लिया है कि “कली कभी भी महरन्द के प्रभाव से वंचित नहीं रहती, क्या कभी कलिया रही महरन्द से जन जान।” स्वयित्री के ये शब्द जितने एक कली के लिए सत्य हो सकते हैं उतने ही उनके लिए भी प्रयास सत्य नहीं हो सकते हैं ?

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस तथ्य का कारण स्पष्ट हो जाता है कि मानव, मानव ही हैं न तो वह वानव है और न अति मानव। अतः मानव का परिचय मानव की कमजोरियों में ही मिलता है। महादेवी जी भी भारतीय नारी जाति की उसी मृगला की एक कड़ी हैं जिनमें यणी और उर्वशी, सीता और उर्मिला, यशोधरा और मीरा बादि हो चुकी थीं। फिर महादेवी में स्त्रियोचित स्वाभाविक विशेषताओं के न मानने में कोई भी कारण नहीं ?

पाश्चात्य विचारकों फ्रायड, स्ट्रुट और जूंग “काम” को ही प्रत्येक कार्य की प्रेरिका समझते हैं। यह धारणा भारतीय

१- साहित्य दर्शन - शचीरानी गुट्ट

२- स्मृति की रेखाएँ - महादेवी वर्मा पृ० ११८

स्मृति<sup>१</sup> ग्रन्थों की भी है। आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्ति भी अव्यक्त मन के विश्लेषण की ओर अधिक रही है। स्वतः महादेवी जी ने 'यामा'<sup>२</sup> की भूमिका में इसे स्वीकार किया है। कृष्ण की भावना कायावादी कविता का प्राण है। महादेवी जी भी प्रारम्भ में कायावादी रहीं।

डा० नगेन्द्र<sup>३</sup> महादेवी जी की कविता के प्रेरणा स्रोतों में कारणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि 'सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन रस और मार्ग ग्रहण न कर सके के कारण, वह एक तो वांछित शक्ति का संचय नहीं कर पायीं दूसरे स्वान्त वृत्तियों की वजह से। इस प्रकार उनके आविर्भाव में, मानसिक दमन और कृत्तियों का बहुत बड़ा योग है। इसे कैसे मुलाया जा सकता है।'

प्रणय- काव्य में कृष्ण काम की प्रेरणा निरर्गल होती ही है, फलतः महादेवी जी के प्रणय काव्य में भी कृष्ण काम की प्रेरणा मानी जा सकती है जिसके प्रभाव से, काव्य में साम्यवाद के नारे लगाये जाने पर भी, महादेवी की करुणापूर्ण कथा की एकजीबी बाहुबलों से गीली ही रही। हृदय सिंहसन भरता रहा और जहाँ किसी किन्हे की जाती उतारती रही। वहीं पर फूल बन कर उगी को कोसती रही। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस रहस्य को उद्घाटित कर देता है कि जीवन से पराङ्मुख, उसके सुख स्पर्शनों से अपरिचित कवि, जीवन की ऐसी जाकाजमा और मानवीय प्रेम की चाह से भरी कविता क्या कर सकता है। निश्चय ही महादेवी जी के जीवन की सहज अनुभूति ही उनके काव्य का उपजीव्य बनी है, विशेषता यह है कि अमि-व्यक्ति की शैली इतनी समर्प है कि उससे जहाँ लौकिक तर्क अनित्य होता है, वहीं पर अलौकिक तर्क व्यंजना भी संभाव्य है। जिसे रहस्यवादी प्रेम कहकर

१- 'कामस्य क्रिया काचित् दृश्यते नेहकहिंचित् ।

ययदिकुरुते जेतुस्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ मनुस्मृति ।

२- महादेवी- यामा- भूमिका पृ० ७

३- कायावाद की प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र

फुकारा जाता है जिसकी रहस्यवादिता में लौकिक शैली की दोस भूमिका स्वीकार की जाती है, अध्ययन करने पर अनेक स्थल ऐसे उपलब्ध होते हैं जहाँ कवयित्री अपनी भावनाओं के प्रवेग में बह उठी हैं और लौकिक शैली का शैलीगत तो गायब प्रतीत होता है। ऐसी स्थलों पर प्रेम निरूपण मात्र लौकिक वावरण में अवस्थित है। ऐसी स्थल किसी भी अन्य कवि के लौकिक प्रेम निरूपण से हटके प्रतीत नहीं होते। उनका प्रेम संस्कृत और संस्कृत रूप में चित्रित हुआ है, जिसमें संयोग वियोग चोम, उपालम्भ, स्मृति वादि की अवस्थाएं आई हैं।

### प्रेम और वाकांक्षा

किरणों के प्रथम स्पर्श से मुकल्लि कलिकाओं, नील नभ में विलसित चन्द्र को देखकर उमड़ती हुईं जल बीजियों, और काले काले भेदों को देखकर गृत्यरत मयूरों को देखकर महादेवी के मत्त में भी प्रेम उद्बिक्त हो जाता है। वे भी प्रिय मिलन की वाकांक्षा फ्राट करती हैं। यदि प्रियतम एक बार भी वा जाते तो वेदना विगलित हो जाती। रोते नयन ऊँघें से भर जाते, अपरों पर स्मित हो जाता, प्राण पुलकित हो उठते और जीवन खान्त हो जाता। यथा-

‘जो तुम वा जाते एक बार  
 ऐसे उठते पल में धाई नैन  
 धूल जाता ओठों से विष्णाद  
 हा जाता जीवन में वसन्त  
 हट जाता चिर संचित विराग  
 बासि देती सर्वस्व बार ॥’ १

प्रेमिका<sup>२</sup> ‘प्रिय’ से हृदय में बस जाने का अनुभव

१- यामा- महादेवी पृ० ६५

२- ,, पृ० ७७

करती है जिससे बोठों का विष्णाव हवा उठे और उसकी बन्त में धनी ही बाकायदा रह जाती है कि यदि प्रियतम स्वप्न में भी वा जाय तो उसी जीवन की संक्षिप्त प्यास बुझ जाय । वह अपने जीवन में न जाने कितने स्वर्ग का चले-

‘तुम्हें बाध पाती वफा में ।  
तो फिर जीवन प्यास बुझा  
लेती उस छोटे साण वफा में ।

0 0

रचती कितने स्वर्ग एक  
लघु प्राणों के स्पन्दन वफा में । ” १

### प्रेम और नैराश्य

प्रकृती के संकल्पात्मक स्वर्ग पराजयी हो गये । एक साण के लिए वे विकसित वसन्त भी में प्रिय वरणों पर अपनी जीवन कली निहावर करने आई, किन्तु पल में सारी भाषा और बाकायदा फिर कृष्ण में परिणत हो गई । यह यह समय था जब सत्य नयनों ने ऊपर उठने का भी साहस नहीं किया था । दो प्रसङ्ग बढ़ाने तक ही उनकी सामर्थ्य थी । इसी समय निहुर प्रिय ने उन्हें पीड़ा का साम्राज्य दे डाला-

‘इन ललवाई पलकों पर  
पहरा था जब ड्रीढ़ा का  
साम्राज्य रुफ़ दे डाला  
उस चितवन ने पीड़ा का ।। ” २

फिर भी ‘उस चितवन ’ की स्मृति को नित्य

नवीन बनाने के लिए महादेवी जी पीड़ा<sup>१</sup> से मुक्त नहीं होना चाहती। बाहुओं में रानी बनी हुई प्रणयिनी बाहुओं से कूटकारा नहीं चाहती क्योंकि यही तो उस निहुर प्रियतम का अंतिम उपहार है। वे बाप भी बहूओं के कहाने से उन्हें प्यार ही करती रहती हैं। जैसे-

मैं कण कण में ढाल रही बलि

बाहू के जिस प्यार किसी का

मैं पलकों में पाल रही हूँ

यह सफा तुझमार किसी का ॥<sup>२</sup>

‘यौवन की लाली’, ‘सपनों की बाली’, ‘ललचाई पलकें’, ‘बाहू के जिस प्यार’ बाकि सभी भौतिक प्रेम की शब्दावली और उपकरण हैं। उन्हें रहस्यवादी धारा में घसीटना उचित प्रतिनि नहीं होता।

### प्रेम और विकलता

प्रेम कहीं विलक्षण होता है। यह कारण ‘आलम्बन’ के दूर हो जाने पर और बढ़ जाता है। प्रियतम का अभाव जीवन को पूरे पत से भर देता है। जीवन स्वाकी वरसात बन जाता है। खाने प्यास के होने पर भी प्रियती वेदना से उन्ही तरह दूर नहीं होना चाहती जैसे गर्म सालू से दग्ध बना। इस विकलता को बलौकिक प्रियतम का संकल्पात्मक-विलग हुए शान्त नहीं कर सका और अन्त में हार कर उन्हें यही कहना पड़ा -

“मेरे छोटे जीवन में देना

न तुझि का कण भर।

१- यान्ता- महादेवी पृ० ७५

२- ,, पृ० ६

रहने दो बाँसों प्यासी

भरती बाँसू के गागर ॥ १

साथ ही वे हस्ते भी चिन्तित प्रतीत होती हैं कि वे प्रियतम के उपहासों की याद को कहाँ ले जाय । प्राणों में वही, प्यास बनकर लिपी है और बाँसों में राग बन कर । वे झूनेपन के भार से कभी हुई कह उठती हैं-

निहुर होकर डालेगा पीस

इसे अब सूने फा का भार

गला देगा फलकों में मूँद

छे इन प्राणों का उद्गार

० ०

विसरते उच्छ्वासों के साथ

इसे विसरा देगा नैराश्य ॥ २

महादेवी जी की बेवसी का यह साकार शब्द चित्र है ।

### प्रन और विराग

कतिपय की स्मृतियों को धामने लाकर व्याकुलता और वेदना की अभिव्यक्ति महादेवी का स्वभाव बन गया है। उन्हें जीवन के दुख से विराग हो गया है किन्तु पीड़ा का राग छोड़ने में नहीं । पीड़ा उनसे भीगे कंजल की तरह लिपटी हुई है। उनकी बाँसों में जो फटकापन है, बाँसुओं के जो फफोले फटें हैं, लक्ष्मों में जो खिलखिलाती पीड़ा कपि है और निश्वासाँ का जो तारता लगा हुआ है, उन सबको दिव्य रूप की कल्पना शान्त नहीं कर

१- यामा- महादेवी पृ० ७५

२- ,, पृ० ५६

रकी । अज्ञातप्रिय का मिलन कुछ उनमें कमी नहीं ला सका । सब है दावते संगी  
को क्या जलसीवर चुका सकते हैं ? महादेवी का यह हुनाफा ही कृपा कृपा में  
व्याप्त है । क्योंकि प्रेमी सर्वत्र अपने ही भावों की जाया देता है। याम-

जाने किस नीति जीवन का  
रदेशा दे मन्द समीरण

० ०

लौटों की हंती पीड़ा में  
बाधों के बिखरे त्यागों में

बाधों के मिटे दागों में

कन कन में विसरा है निर्मल

मेरे मानस का हुनाफा । १

जीवन की अतीत सुखय मणियों की मृत्ति उदा-  
देवी जी को पल पल व्यथित करती है। यह एक विलम्बाण नीति मात्र है। वेदना  
के विषय पान कर लेने पर ही सिवत्व की प्राप्ति संभव है, उसे पूर्ण नहीं ।  
मीरा में हम ऐसी स्थिति नहीं देखते । भोजराज की मृत्ति के बाव में मन्तः  
राधा बन गई और कृष्ण ही उनके सर्वस्व हो गये थे , किन्तु महादेवी की तब  
प्रतिदूल स्थिति है। अतः उनकी वेदना का कारण कोई लौकिक त्याग ही है  
जिसकी व्याप्ति सायंकाल और भी अधिक बढ़ जाती है-

जब तारे फैला फैला कर

दूने में गिनता बाकाश

उसकी सोई ती बाधों में

घुट कर मूक हुई बाधों में । २

१- यामा- महादेवी पृ० १२

२- ,, पृ० १२



### प्रेम और उन्माद

कायावादी अन्य कवियों की तरह, महादेवी की कविता की प्रकृति भी अतिव्य उन्माद का प्रताप दिखाने की ओर रही है। विश्व-वेदना का पारा अवश्य ही अन्तिम सिंगी तक पहुँच गया है फिर भी श्वेतना पूर्णतः विकलित नहीं हुई है। उसका रूप संश्लिष्ट भी है। प्रिय के लिए फल लिखती हुई महादेवी की अवस्था उन्मादिनी की है-

‘कैसे खेत प्रिय पहुँचाती

बप्पे ही पूने पन में

लिखती हु, हु लिख जाती ॥’ १

जब जब प्रिय की स्मृति आती है<sup>२</sup> तो पृथ्वी में खेती करके उठती है कि जानो जीवन निरपन्थ हो गया जो। प्रेमी को यह निश्चय नहीं होता कि वह रुख ( नह ) या दुग्ध ( दूध ) पान कर रही है, वह चावल है काना पुष्पा किन्तु फिर भी पीना तो ठीक, निम्न जाने ही, पीना फल रहा है। उसे खाना भी बात नहीं कि प्रिय चावल है या चना नया। उसे कोई सम्बन्ध है उसका नहीं -

‘खारे कलती वाता प्रिय’

निश्वास बताते ‘वह पाता’,

बाँलों में सम्मन जनमाना

उर चढ़ता यह निर वाता ॥’ ३

### प्रेम और स्मृति

स्त्रीय की स्मृतियाँ सुख और दुःख दोनों प्रकार

१- वाता- महादेवी- पृ० १५६

२- ,, पृ० १०८

३- ,, पृ० १५९

की होती है। जब स्मृति सुख होती है तो महादेवी जी का जीवन 'वास-विस्मृति' में भर जाता है। कभी कभी तो स्वयं प्रिय जी स्मृति की विस्मृति के लालन हो जाती है-

“ मेरे लालन में उसी स्मृति

जी तो विस्मृति बन जाती ॥ ” १

अतीत की स्मृतियाँ लक्ष्मण के बाद और अधिक दुःख हो जाती हैं। लक्ष्मण का समय स्वाधीन दुर्बल हो उठता है, देवद जीवन दीप के लालन का दुःख गेला को व्यतीत करने के लिए जलता रहता है। मृत देवनायें जाग उठती हैं, वृक्षों में क्रन्दन हो उठता है, पत्तों में प्रवाह जल उठते हैं। प्राणों में पीड़ा की पीर बढ़ चढ़ती है, स्वप्नों के चित्र वास्तव किंग पाते हैं। क्या-

“ लवनि कौन तप में परिमित ला,

सुधिरा, सायारा वाता ?

सूने में ललित लिखन से ,

जीवन दीप जला पाता ।

०                      ०                      ०

पलकों में भर नवल नेह- वन ,

प्राणों- में पीड़ा की कम्पन

स्वाप्नों में वाता की कम्पन ॥ ” २

महादेवी जी के जीवन में स्मृतियों के गैले तक लगे हैं, प्रिय जी सुधि के बिना उनको पल पल घूना प्रतीत होता है-

१- वाता- महादेवी पृ० ६८

२-                      ,,                      पृ० ६८

‘फँस जाँनि से बेतुफ करते क्यों ?

यह जागृति के मेल ।’ १

० ०

तेरी सुधि विन जगण -जगण हुआ ॥’ २

### प्रेम और प्रतीक्षा

प्रेम में स्मृति खज हो जाती है जो उत्पन्नि मन प्रतीक्षा में लीन हो जाता है- इस भावना से भी महादेवी जी की कविता मूल्य नहीं है। वियोग में आँसों की सबसे बुरी कथा होती है। महादेवी की आँसों भी प्रिय की स्मृति में आँसू की लड़ियाँ गुँथती हैं। उनकी आँसू रात जागकर प्रिय का पथ जोहती हैं, किन्तु रंगीन प्रातःकाल नहीं आता। प्रिय की ‘अवहेला’ की चोट ने मानस कुंज में धूल भर दी है, जिसमें बेइनामों के वात्स्याच्छ्र चल उठे। हृदय उच्छ्वासों का नींद बन गया-

‘जला जिसमें आशा के बीज

तुम्हारी करती थी मृत्तुहार

हुआ वह उच्छ्वासों का नींद

रुदन का सूना खामागार ॥’ ३

---

१- यामा- महादेवी पृ० २२४

२- ,, पृ० १६६

३- ,, पृ० ४०

महादेवी जी के प्रेम की पराजय का अनुभव करती हैं कि प्राण भस्म होते जा रहे हैं, परन्तु मृत्यु पर बाह भी नहीं आती।<sup>१</sup>

भस्म होते जाते हैं प्राण,  
नहीं मृत्यु पर आती है बाह ॥<sup>१</sup>

आशा कहीं बलवती होती है। महादेवी जी फिर भी आशा में प्रतीक्षा करती रहती हैं -

सजग लखती थी तेरी राह  
सुताकर प्राणों में खसाव  
पलक प्यालों से पी पी देव  
नशुर बाणव सी तेरी याद ॥<sup>२</sup>

इसमें आशा, स्मृति और प्रतीक्षा का तुल्य समन्वय हुआ है।

### प्रेम और उपात्म

महादेवी जी की निरह विभावरी निरन्तर है। इस वे नित्य ही आशा के दीप जलाकर व्यतीत करती हैं। निरह की काली रात को वे आँसुओं की तरल लहरियाँ गूँथ गूँथ कर काटती हैं। जागती हुई प्रिय की राह देखती हैं। उसकी मनुहार करती हैं, किन्तु यह सब व्यर्थ ही रहा। वह निश्चुर प्रिय नहीं आया। उन्हें फँसे प्रातः के छी कर्न हुए। प्रिय की अवस्था की चोट ने जब उनके मानस कुंज को उजाड़ कर उसमें निराशा की धूल भर दी तो वे अन्य प्रेमियों की तरह प्रतीक का महारंग लेकर उपात्म भी बनें

१- यामा- महादेवी पृ० ५३

२- ,, पृ० ५४

लगी और देती भी क्यों न ? क्योंकि उस निष्ठुर को तो पिछली गर्मियों का उपहार भी स्वीकार नहीं हुआ -

‘ हृदय की लेकर प्यारी साध,  
बसाया है अब कौन विदेश ?  
रो रहा है तरणों के पास  
चाह जिनकी थी उनका प्यार ? ’ १

यह मीठा उपालंभ भी निराश्रित प्रेम की परि-  
पक्वता का ही परिचायक है। प्रेमिका प्रिय को उपालंभ भी देती है किन्तु जब  
उस वज्र हृदय पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता तो कभी कभी महादेवी जी  
अपनी केबली में ही अपने हृदय के पुंजीभूत शोभ को दिनी माध्याह्न के व्यक्त  
करके आत्म सन्तोष प्राप्त करती है। एक खल पर वे फूल के लिए अपने प्रिय  
की हृदय हीनता को व्यक्त करती हुई अपनी विवशता प्रकट करती हैं-

‘ मत व्यथित हो फूल किसको  
सुल दिया संसार ने ,  
स्वार्थमय सबको बनाया,  
है यहाँ करतार ने ॥ ’ २

इन पंक्तियों में दिव्य- प्रेम की वृन्ध नहीं आ  
सकती है। यहाँ महादेवी जी पुष्प की एक पंखड़ी बनकर अपनी व्यथा को व्यक्त  
करती हैं। यह ठीक ही है। असफलता में मानव नियति की डोरी का डी तो  
अवलम्ब ग्रहण करता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। महादेवी जी भी असफलता  
में यहाँ नियति का बाँधल धारण हुए हैं -

१- याना- महादेवी पृ० ३६

२- ,, पृ० ३०

मेरे छोटे जीवन में

देना न तृप्ति का कण भर  
रहने दो प्यारी बागि,

मरती बागि के जागर । १

### प्रेम और चेष्टार

प्रत्येक प्रेमी अपने प्रेम को ज़रूर सफल बनाने की चेष्टार करता है। इसी के लिए तो पार्वती ने भी ज़मीन और वायुमान के कुलाचि मिलाये थे। महादेवी जी भी प्रेम-चेष्टाओं में निरक्षर नहीं हैं। ससि दे के अपने चरणों में वरुण बाघों का अत्यन्तक लगाने को कहती हैं। रजनीगन्धा का पाउडर मंगाती हैं। यूथी की लाल कलियों के रंग में राग में सिन्दूर भरवाती हैं। गुलाब के रंग में अपनी सारी रंगवाती हैं। बागों में काजल लगाने को भी कहती हैं। या-  
 रंजित कर दे वह सिधिल चरण ले नव अशोक का वरुण राग  
 मेरे मण्डन को बाज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग ,  
यूथी की मीलित कलियों में  
जलि दे मेरी कलगी रंगार ।  
 पाटल के सुरमित रंगों के रंग दे हिम सा उज्ज्वल सुहृन् ,  
 गुध दे रसना में जलि- गुंजन के पूरित फागो बहुल- फूल ,  
 रजनी के अर्पण भाग रजनि  
 दे मेरे बलसित नयन चार ।  
 तारक लोचन के रीच रीच नभ कहता रंग को विरज बाज,  
करपाला फल में हरविहार केशर से नर्चित तुल-लाज ।। २

१- यागा- महादेवी पृ० ७५

२- ,, पृ० २१९

यह सब शृंगार प्रिय को प्रसन्न करने के लिए है ।  
प्रिय के आगमन का अनुमन मनाती हैं। प्रिय आ जाये और उजड़ा मार्ग प्रशस्त  
बना रहे , इसके लिए वे दीपक भी जलाती हैं। इन सबों से लौकिकता की  
फलक भले ही मिल जाय किन्तु अभिव्यक्ति का आधार इन लौकिक है जो वर्णन  
के लिए लौकिक अनुभूति की अपेक्षा रखती है।

‘मधुर मधुर मेरे दीपक जल

प्रियजन का फा आलोकित कर ।’ १

दीपक जलाने की भारतीय नायिकाओं की बहुत  
प्राचीन परिपाटी है। वे अपने पति की जंगल कामना के लिए, उनके रक्षाल घर  
आ जाने के लिए और अपने पालिश्वर के पालन के लिए दीपक जलाती आ रही  
हैं । इसी का अनुकरण महादेवी जी ने किया है जिसका परिचय प्रसाद जी ने  
कामायनी में इस प्रकार दिया है -

‘जब कामाना सिन्धु तट बाई

ते लंघ्या का तारा दीप ।

फाड़ें सुनहली चादर उसकी

तू क्यों हँसती बरी प्रतीप ।।’ २

प्रिय आने वाला है । यह क्षिती अमृत्य घड़ी है । कहीं यह समय हाथ में  
न निकल जाय यह सोचकर महादेवी जी फि फि रटने वाले बालक और कोकिल  
को शान्त कर देती हैं। समीर भी सो गया है। वातावरण नीरव है । प्रियका  
ने दीपक भी जला दिए हैं, उसकी स्तुहारे करती हैं-

‘जला जिसमें आशा के दीप

१- वासा- महादेवी पृ० १४५

२- कामायनी - जयशंकर प्रसाद पृ० ३८

तुम्हारी करती थी मुहार । १

किन्तु प्रिय नहीं जाता । रुदन और उच्छ्वासों ने हृदय में गरज कर लिया है ।  
फिर उसे प्रिय के पास उल्लेख भेजने की चेष्टा करती है किन्तु परिस्थितियाँ  
विषम हैं -

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती ।

दृग- जल की सित मसि है कपास,

मसिप्याली, फाँसे तारक-ऊँच,

पल पल के उड़ते फूलों पर,

सुधि से लिख खारों के बजार -

में अपने ही नेत्रोपन में

लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती ॥ २

उसने पर भी प्रिय नहीं जाता है तो उसे स्वप्न में वापस की चेष्टा करती है ।

### प्रेम और अनुभाव

साहित्य मीमांसकों ने आशय के वृत्तान्त भावों की सूचना देने वाले आरौरिक प्रभावों को अनुभाव कहा है। महादेवी की की कविता भी इन्हीं अनुभावों की मञ्जूषिका बनी हुई है। विरह में प्रिय की स्मृति आती है। प्रेम-वन हृदय में उमड़ता है। कसक की बिपली होती रहती है। रोमान को मरना और आँसू गिरने लगते हैं -

तरल नीली से नयन भरे

मानस से ले उठे स्नेह घन

१- याना- महादेवी पृ. ४२

२- ,, पृ. १५६



कसक विष पुलकों के हिमकण

सुधि स्वामी की चाह पलक लीपी में उतरे ।

स्वप्न में प्रिय के स्पर्श प्राप्त हो जाने पर उनके चेहरे पर हल्कान और महीरे पर पुलक आ जाता है। प्रिय के हुम्न से मन चकित हो उठता है और महीरे जात्य विस्मृति से सिधिल हो जाता है-

‘जिनका हुम्न, लीकता मन

जैसुध फल से भरता जीवन ।’ १

जब जीवन पाहुन विप जाता है तो दृष्टि में लीरी आ जाती है, निश्चय वात्याच्छ से लीरु करने लगती है -

‘मेरी चितवन में उमड़ा तम का पागलपार

मेरी बासा के नव बंदुर मूलों में बाजार ,

पुलिन रिक्तामय मेरे प्राण

मेरे निश्चारों से कटती रुकती भंगमावाज,

बाहू में दिनरात प्रलय के घन वस्त्रे उत्पन्न ,

कसक में विधुत अन्तिमार्ति । २

प्रणयिनी महादेवी की सत्त मनोकामना प्रिय मिलन है -

‘जो तू आ जाते एक बार

कितनी करुणा कितने पद

फल में विरु जाते वन पराग,

जाता प्राणों का तार तार

१- याता- महादेवी पृ० १६६

२- ,, पृ० १६१

अनुराग भरा उन्माद राग,

आँसू लो वे फल पखार ॥ १

### प्रेम प्रतीक

प्रायः सभी शाय्यावादी कवियों ने प्रेम- निरूपण में प्रतीक- पद्धति का प्रयत्न लिया है। प्रेम में तीव्रता और उसकी संयमित रूप देकर प्रतीक पद्धति ने शाय्यावादी कवियों के प्रेम को गूढ़ बना दिया है। महादेवी जी ने भी प्रकृति के उपमानों को ग्रहण कर अपने प्रेम में रहस्यमयता और अमरत्व उत्पन्न कर दिया है। महादेवी ने भी प्रकृति के उपमानों को लेकर जब वे निष्ठुर प्रिय को उपालम्भ देती हैं, तो फूल को अपने जीवन रूप में प्रतीक बना कर कहती हैं-

‘मत् व्यथित हो फूल

किसको चुस दिया संसार ने

स्वार्थमय सबको बनाया

है यहाँ करतार ने ॥ २

पुष्प की तरह महादेवी का जीवन भी स्वार्थ का शिकार बना है। वही को भी जीवन के अर्थ में गृहीत किया गया है -

‘क्या कभी कलिका रही

मकरन्द से अनजान ।

और दीफ को भी जीवन के अर्थ में गृहीत किया गया है-

‘जिसके निष्फल जीवन ने

जल जल कर देखी राहें

१- यामा- महादेवी पृ० ६५

२- ,, पृ० ३०

निर्वाण हुआ है देखो

वह दीप लुटा कर चाहें ।। १

### बलौकिक प्रेम और साधना

धीरे धीरे प्रेम की धारा, नया मोड़ लेती है।  
उसका सम्बन्ध अलीन अज्ञात प्रिय से जुड़ जाता है। उनका लौकिक प्यार ही  
अब स्वर्ण बनता जाता है। अब उसमें प्रतिदान की चाह नहीं। प्रेम का प्राज्वल  
रूप द्रष्टव्य है -

‘फही है पीड़ा रंजाहीन

साधना में डूबा उद्गार ,

ज्वाल में बैठा हो निस्तब्ध

स्वर्ण बनता जाता है प्यार । २

यह प्रेम का वह दिव्य स्थल है जहाँ हृदय में न उन्माद है न रंताप , न लाल  
और न अन्तर्नाद । प्रिय की तस्लीनता में प्रेमी को पीड़ा की चेतना ही नहीं।  
इसी प्रेम की पराकाष्ठा में वाणी मौन हो जाती है। विषा डी जिलाता है।  
पीड़ा ही प्रिय हो जाती है। ऋ ही नयनों का शृंगार करते हैं और प्रतिष्ठा  
ही उनका अंगन हो जाती है-

‘जहाँ विषा देता है वारत्त्व

जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत

ऋ हैं नयनों का शृंगार

जहाँ ज्वाला बनती नवनीत

मृत्तु बन जाती न जीवन । ३

१- यामा- महादेवी पृ० २४

२- ,, पृ० ५३

३- ,, पृ० ५७

लौकिक प्रेम की तरह यहाँ न तो वासना की गन्ध है, न शोण की जाह और न वृषि की कान्ता और न अनुनय मनुहार, क्योंकि राधना ने पैरों पर प्रेमी कड़ी हो रही तो मनुहारें व्यर्थ हैं, धिधियाने से क्या काम ?

‘ क्या अनुनय में मनुहारों में

क्या पारू में उद्गारों में । १

महादेवी जी की यह राधना भी स्वान्त राध्या है । उधारी बालारम्भा ने बहुत दूर ।

### वलौकिक प्रेम और विराग

महादेवी जी की यह बात ही क्या कि स्वार्थ-मय संसार में लौकिक प्यार काशमगार के समान है । फलतः वे साक्षात्कृत चाण्डाल यौवन विलास की लीला स्थली अपने स्वान्त तपोनिष्ठ जीवन को नहीं बनाना चाहती, क्योंकि उन्हें सामरसिकता से वैराग्य को क्या है । मस्ति स्फीर का आगमन, निर्भर का कलकल निनाद, लहरों का अस्फुट आवाहन और वसन्त का आराधना उन्हें अब नहीं रुचता, क्योंकि इनमें उन्हें अपने स्वान्त प्रेम की एकाधि के भग्न होने की भावकें रहती हैं और वैराग्य विमल का भग्न । इसलिए वे कह उठती हैं -

‘ निराली कल-कल में अभिराम

मिलाकर मोहक मादक गान,

०

०

बालकर पौरुष में उन्माद

नशीली फैलाकर निखास

हुमायो धी न दुग्ध वसन्त

विराली में पैरा स्वान्त ॥ २

### बलौकिक प्रेम और वाकांक्षा

जब निश्चय ही महादेवी की वात्सा को पार्थिव वस्तु व्यवहारों में गुरुत्व नहीं रही किन्तु उसका सम्बन्ध रहा 'पहरे' और 'ध्यात' प्रिय से जुड़ जाता है। महादेवी की व्यगुल वात्सा को प्रिय से मिलनातुरा होकर प्रियागमन के लिए अनुनय करती है। वाकि हा मिलन में जीवन ललिका के सक्तभक्त में पुनः बरान्त आजाय -

“नव धन बाज बनो पलकों में

पाहुन अब उतरो पलकों में

० ०

मधु दिन के सब नित्र बनो तुम

तूने चाण चाण के पलकों में ॥ ” १

और कभी कभी महादेवी जी प्रिय को विधृत रूप में सुनाती हैं -

“तुम विधृत रन जाओ पाहुन ।

मेरी पलकों में मगधर कर । ” २

इससे सिद्ध है कि देवी जी में कितनी वाकांक्षा और उत्कर्ष है प्रिय मिलन की जहाँ वे हर समय पलक पाँके बिनाकर बैवार हैं और जो भी पलकों में आये कि मिलन ही तो उनके जीवन की अन्तिम चाह और राज्य है। कभी में उनको जीवन का चरम विकास भी जाना ।

“तुम में मिल जाना ही है

जीवन का चरम विकास ॥ ” ३

१- वात्सा- महादेवी पृ० २३८

२- ,, पृ० १३९

३- ,, पृ० ११६

### कलंकिक प्रेम और मिलन

महादेवी जी का प्रिय से निमृद मिलन जो जग है । यह वहाँ तब सत्य है स्वतः कमयित्री का हृदय ही सभी किन्तु काका उनके मिलन में प्रमाणा हैं। उनका प्रिय लोक रूपों में आता है। यमा-मणिमों की भाया में धाने वाले प्रिय का मिलन द्रष्टव्य है-

“वह उर में आता बन पाहुन  
कहता मन से धन न कृपणा बन  
मानस की निधियाँ गेता गिन ।

कभी महादेवी जी के प्रिय खोल बन कर आते हैं -

“वे बुझी के मानव में  
वा रिफो उच्छ्वास बन ।” १

० ०

“हृत्तंत्री में स्वर भर जाता  
जब दृगों में, हूँ सबल सफनों के चित्र बनाता ॥

किन्तु जग ने जब महादेवी जी के इस मिलन पर काव्यनिक्षता का तारोप दिया  
“क्यों जग कहता मतवाली ?” तो वे इसके प्रत्युत्तर में अरामिल्ल के चिह्नों की ओर धकेल करके कहती हैं -

“कैसे कहती हो सप्ता है  
बलि ।। उर मूल मिलन की बात  
भरे हुए जग तब कलियों में  
मेरे बाँधू उनके हाथ ॥

मिलन की धड़ियाँ चाणिक ही रहती हैं और नैराश्यता प्रणालिनी आत्मा को धर लेता है ।

### अलौकिक प्रेम और नैराश्य

“चाहा था तुझमें मिटना भर,  
दे टाला बनना मिट मिट कर ।” १

पल में ही प्रिय का वियोग हो जाता है। वियोग ने उसके हृदय को नैराश्य के तिमिर से भर दिया है। उसके समस्त स्वप्न भी काँट की तरह निन्न निन्न हो गये -

“उम्र तिमिरमय घर तिमिर मय,  
राह में रो रो गये हैं, रात और बिजान तेर  
काँच ने टूटे फँस यह,  
स्वप्न भूलें, मान, तेरे ॥” २

साथ ही उसके नैराश्य की शायद प्रकृति में भी व्याप्त हो जाती है -

“बीढ़े मेरी राह,  
रात देती उजियाला ।” ३

### अलौकिक प्रेम और स्मृति

वियोग में स्मृति की कलंगार से ही प्रेम निम्न नूतन और अक्षुण्ण बना रहता है। स्मृतियों का जो महादेवी जी के हृदय पर कटु और नशु प्रभाव पड़ता है उससे उनका जीवन जीने की तरह मुह बनता बनाता

- 
- १- यामा - महादेवी पृ० ११  
२-       ,,            पृ० १६७  
३-       ,,            पृ० २१३

है जिसमें स्मृति हीरे के 'कन' के समान कान्तिमान की उड़ती है -

‘हीरेक सी वह याद, बनेगा जीवन लोना  
जल जल तप तप किन्तु सरा इसकी है हीना ॥’ १

प्रिय स्मृति के रूप में प्राणों में प्रतिफल मौजूद रहता है -

‘वे स्मृति बनकर मानस में  
खटका करते हैं निरु दिन ।’ २

‘खटवना’ शब्द अत्यन्त ही समीचीन है। सचमुच स्मृति चीन्ही की तरह भी हृदय पर लाधात डालती है। फिर भी सहारा विरह में स्मृति का ही तो रहता है अन्य चारा ही क्या ?

‘एक सुधि सम्मल तुम्हीं के  
प्राण मेरा मार्ग लाया ,  
तौल करती रात जिसका,  
मोल करता प्रात वाया ॥’ ३

### वर्गीकृत प्रेम और वेदना

प्रिय ने जाते जाते महादेवी जी को भेंट में की प्रेम की मधुमय पीड़ा । यह वेदना की वेदी ही उनके प्रेम की सच्ची सात्त्विक पावन भूमि है । महादेवी जी प्रिय की स्मृति में दत्त वित्त होकर वेदना को सहती जाती हैं किन्तु उन्हें इसका ज्ञान नहीं । पीड़ा उनके जीवन के भीगे अक्षर की तरह लिपटी हुई है। सचमुच उनका पीड़ा का संसार निराला है । उन संतप्त

१- यामा- महादेवी पृ० २१३

२- ,, पृ० ११०

३- ,, पृ० २२८



है । प्राण जल रहे हैं । पीड़ा बढ़ती है । कसक उठती है । दाढ़ बढ़ता है । निश्वासें दीर्घ होती हैं । शरीर जगमगा होता जा रहा है । नयनों ने जल समाया ले ली है । उद्गार साधना में लीन हैं और पीड़ा जगाहीन । अगर फिर भी न शिकायत है न शिक्वा । न विनित है और न बारजू । न फरिडाद है न चाह और न रिहा होने की राह । हट धुट कर सर जाने ली ली साध है । वही दिव्य प्रेम पर लौकिक प्रेम के वर्दम के कीटे भी नहीं । इतना प्रेम महान् है -

मूढ़ करके मानस का ताप  
 सुलाकर वह सारा उन्माद ,  
 जलाना प्राणों को चुप्ताप  
 बिपाये रोता अन्तर्नाद ,  
 कहाँ सीखी यह अद्भुत प्रीति ?  
 सुग्ध है मेरे जोड़े दीप ।  
 चुराया अन्तस्तल में भेद  
 नहीं तुमको बाणी की चाह  
 भरम होती जाते हैं प्राण  
 नहीं मुख पर बाजी है दाढ़ ,  
 गीन में रोता है अन्ति-  
 लज्जिल मेरे जोड़े दीप ।  
 जगमगा होता जाता है गात  
 वेदनाओं का होता अन्त,  
 विन्तु करते रहते हो गीन  
 प्रतीक्षा का आनन्दित पन्थ  
 सिखा दो ना नेही की रीति-  
 बनोसे मेरे नेही दीप ।  
 पड़ी है पीड़ा जगाहीन  
 साधना में डूबा उद्गार,

ज्वाल में बैठा हो निस्तब्ध  
 स्वर्ण बनता जाता है प्यार ,  
 मिता है तेरी प्यारी मीति-  
 वियोगी मेरे सुफले दीप ।

बनौछि रे नेही के त्याग ,  
 निराले पीड़ा के संसार  
 कहाँ होते हो अन्तर्धान  
 लुटा अपना होने का प्यार ?  
 कभी आयेगा ध्यान कतीत -  
 तुम्हें क्या निवाणान्तर दीप ॥ १

पीड़ों का यह संयमित रूप देखो ही बनता है।  
 यहाँ महादेवी ने न तो गोपियों की तरह नेत्रों से भयों को डराया है और  
 न जमुना में बाहुओं की बाढ़ ही उमड़ाई है। नागमती की तरह रक्त से बाहु  
 उनकी बाँधों से नहीं टूटते और न उनके वीर बहूटियाँ ही बनती हैं। प्रिय-  
 काशीन नायिकाओं की तरह वे न तो आँखों के हिलोले में झूझती हैं और न  
 जायसी की नागमती की तरह कृपाओं से पत्ते फाड़वाती हैं। बिकारी की नायिका  
 की तरह उनके प्राणों की ज्वाला परिजनों को नीले वस्त्र सामने लाने को बाध  
 नहीं करती और न विरह धूम से पथिक इस बात का अनुमान कर लेते हैं कि जहाँ  
 कोई विरहिणी जल रही है। वे प्रियतम के लिए सन्देश कहतीं। दूर भी भौंके और  
 कानों को बुलाकर काला नहीं करतीं। उनकी विरहाग्नि न 'पलका' में ही  
 लगती है और न 'लका' में ही है। वे विरह-वेदना से अपनी क्षीण भी नहीं  
 बनी कि विस्तर फाड़ने का प्रश्न उठे किन्तु इसका प्रयोजन क्याचित यह नहीं  
 कि उन्हें प्रिय-विरह की वेदना न हो। पीड़ा है किन्तु उन्हीं कागजार और

ऊहात्मकता नहीं। पीड़ा का केवल संतुलित रूप ही दिया है।

### वर्तुलिक प्रेम और विफलता

जब वेदना असह्य हो जाती है और प्रिय के दर्शन नहीं होते तो महादेवी जी का नारी हृदय बधीर हो उठता है। वह अपनी विच्युब्धता और व्याकुलता मिटाने की कोशिश में वाकाल को जीमे का भी साहस करती हैं-

“ फिर विकल हैं प्राण मेरे

तोड़ दो यह धितिज में भी देस तू उस ओर क्या है ? ” १

इसमें प्रेम की सात्त्विकता और पावनता है। निर्लिप्तता और निष्कामता की विरणों इससे फूटती हैं। यह प्रेम गाम्भीर्य का सुन्दर परिचय है।

### वर्तुलिक प्रेम और प्रतीक्षा

प्रेम में व्याकुलता होने पर भी वाकाल साथ नहीं छोड़ती और वाकाल के कारण ही महादेवी प्रिय के आगमन में प्रतीक्षा करती रहती हैं। प्रतीक्षा में सुग सुगान्तर भी बीत गये किन्तु सब निष्फल -

“ नर तरसे कितने सुग बीत

हुए कितने दीपक निर्वाण

नहीं पर मैं पाया रीत

तुम्हारा सा मन मोह्य गान ॥ ” २

प्रेयसी ने जागते हुए वाकाल के चमकीले सारों को भी फीका कर दिया तात् रात भर जागती रही और चन्द्रमा भी साथ ही लुप्त हो गया और प्रातःकाल

१- यामा- महादेवी पृ० २३२

२- “ “ पृ० १

०० “

की अरुणिमा भी संध्या के पीले प्रकाश से धी दीनी । सारासतः महादेवी जी वहर्निश प्रतीक्षा में ही निमग्न रहती हैं -

‘ कितनी रातों को मैं  
नहलाई है बंधियारी  
धी डाली है संध्या के  
पीले रँदुर से लाली । ’ १

### अलौकिक प्रेम और मान

सब कुछ सहते हुए भी नारी का गौरव स्वामि-मानिनी होने में है। स्वामिमान उसके प्रेम को द्विगुणित करता है। स्वामिमान से हीन नारी मणि विहीन सर्प के तुल्य महिमा लुप्त है। महादेवी जी अपने अज्ञात प्रियतम से भी मान करती हैं। उनके आँसुओं की कीमत उनका प्रिय नहीं चुका सकता और न उनकी सी पीड़ा का भार ही वहन कर सकता है। स्वामिमान में धाकर आँसुओं का प्रसिदान नहीं चाहती । यही प्रेम की सुखा, सुखिता और सात्विकता है। वे पूरे बैठती हैं -

‘ क्या वह दीप जलेगा तुमसे  
भर हिम का पानी ? ’ २

महादेवी जी अपने भिन्न जीवन को भी अज्ञात प्रियतम के वैभवपूर्ण जीवन से हीन नहीं समझती । उनके मान मोचन के लिए प्रिय की दूतिका साफ़ आती है किन्तु वे मान ही नहीं लेती -

१- यामा- महादेवी पृ० २५

२- “ पृ० १४४

३- “ पृ० १४६

‘ नव इन्द्र धनुष सा चीर महादर अर्पन ले

फिर बाई मनाने सार्फ में वैरुध मानी नहीं । ’ १

किन्तु मान में ही प्रेम का अवसान नहीं हो जाता । संभवतः उन्हें मालूम नहीं था कि उनका मान न त्यागना उनके प्राणों के लिए कितना महंगा सौदा हो पायेगा । बाद में वे स्वतः ही अन्ततः प्रियतम को मनाने की चेष्टा करती हैं और अपनी पराजय स्वीकार कर लेती हैं । यही से उन्हें पीड़ा का अमिट साम्राज्य मिल जाता है । फलतः उनकी प्रेम-साधना दारुण हो गयी है-

‘ ताज है जलती शिखा ,

चिनगारियां झुंकार माला ,

ज्वाल बचाय कोण सी

अंगार मेरी रंग शाला ॥ ’

अन्त में महादेवी जी अपने आपको अमर सुहाग मरी और अनन्त अनुराग से युक्त मानती हैं -

‘ सखि मैं हूँ अमर सुहाग मरी ,

प्रिय के अनन्त अनुराग मरी ॥ ’ ३

हम अनुराग का अंश जीवन में उनको कितना मिला है, यह वे स्वतः जान सकती हैं, किन्तु उसकी साधना उच्चकोटि तक पहुँच चुकी है -

‘ श्रवण नयन मय नयन श्रवणमय

बाज हो रही कैसी उत्फन्न ,

रोम रोम में होता री सखि,

एक नया उर का सा स्पन्दन ॥ ’ ४

१- यामा- महादेवी पृ० १७

२- ,, पृ० ८

३- ,, पृ० २५४

४- ,, पृ० १७

इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि महादेवी जी तभी अपनी पत्नी के प्रेम साधना की उस उच्चतम भूमि पर नहीं पहुँची हैं जो मन्त्र ने अपने जीवन में ' मैं लैला हूँ ' कह उठने के बाद प्राप्त किया था । जिस दिन वे अपने आपको भूलकर, प्रिय मय होकर ' मैं प्रिय हूँ ' ही कहने लग जायेगी तभी उनकी आवुल-उलफन और बाधा बाधित हो जायेगी ।

### प्रेम और वातावरण

महादेवी जी का प्रियतम अंगत और कलबेला है। उसे तम के परदों से ही आना अभिप्रा है। अतः जब महादेवी जी उनके वागमन का स्केत तारकित नम से प्राप्त करती हैं तो वे बोकिल को मान्त कर देती हैं-

‘ मेरे निमिषों से भी नीर हैं उसकी फा चाप,  
प्रिय मेरा निरीध नीरवता में वाता सुफाफ  
रुमग एक पल घड़ियाँ अनमोल  
उठीले हौले हौले बोल । ’ १

जब तारक परियाँ लुक बिप कर नर्तन करती हुई सी ओर बिन्दु के नूपुर बगेर देती हैं और सुवास्ति मलय फन के फादोरे जब चले हैं तभी उन्हें प्रियागमन की सूचना मिलती है। मिलन के मधुमय वातावरण को बिन्न भिन्न न करने के लिए वे उषादिय से घुंघट पट उठाने को मना करती हैं, क्योंकि रात्रि सुन्दर व सुखद वातावरण है -

‘ निशि गई मोली सजाकर,  
हार फूलों में लगाकर  
लाज से गल जायेगे  
गत पूर इनके मोल री ।

स्वर्ण कुमकुम में बसा कर  
है रंगी नव मेघ चूनर  
विहल मत धुल जायगी  
इन लहरियों में लोल री । १

रात्रि में स्वमुख विहसित पुष्प रंग ही प्रतीत होते हैं मानो प्रकृति मण्डी में  
फूलों की हाट लगी हो ।

#### अलौकिक प्रेम के साधन

महादेवी जी का प्रेम हृदय की निःशब्द भावनाओं  
का उच्चलन है। उनका प्रिय वत्सात और अलौकिक है, अलखला वा है। इतना होते  
हुर भी प्रेम भावना में विह्वला देवी जी माधुर्य भावना से भावित होकर वत्सात  
प्रियतम को प्रसन्न करने का भी उपक्रम करती हैं। चूंकि प्रियतम अलौकिक है,  
फलतः उनकी राज्या सामग्री भी अपार्थिव है। वे प्रकृति के उपकरणों से गुंजार  
करती हैं -

सशि के दर्पण में देख देख  
मैंने सुल्फाये तिमिर देख  
गूँघुन तारक पारिजात  
खरगुटन कर विरणों बणिया  
क्यों आज रिफ्त पारया न उन्ने  
मेरा लभित नृंगार नदी । २

फिर भी उनकी राज्या सफल नहीं होती क्योंकि प्रिय उन्ने भी प्रसन्न नहीं  
होता । यहाँ चन्द्रमा , तिमिर, तारक, विरण क्रमः देवी जी के लिए दर्पण

१- याता- महादेवी पृ० १८५

२- ,, पृ० २०६

केश, पुष्प और पट बने हैं, जो अलौकिक उपकरण ही हैं। कभी कभी उनके उप-  
करण भावात्मक बन गये हैं -

तू स्वप्न-सुप्तों के सजा तन  
विरह का उपहार ले,  
अगणित सुगों की प्यास का  
वस नयन लज्जन सारण । १

### प्रेम प्रभाव

महादेवी जी की प्रेम साधना प्रधानतः भारतीय  
होते हुए भी अनिवार्यतः भारतीय नहीं है। उस पर दृढ़ी प्रेम पद्धति, बौद्ध  
दर्शन, जैनवाद और यत्र तत्र पाश्चात्य रोमांटिक प्रेम धारा का भी प्रभाव  
दृष्टिगोचर होता है। भारतीय प्रेम परम्परा के अनुसार महादेवी का स्त्री-  
पुरुष या प्रिया और प्रिय का सम्बन्ध भारतीय ही है। मिलन की रास्ता,  
उसके लिए दिये गये स्त्री व्यापार भारतीय परम्परागत ही हैं किन्तु फिर  
भी कुछ स्थलों पर दृढ़ी प्रेम पद्धति का प्रभाव भी उजागर होता है। विरह  
में जासों की कालिमा उखार को बन्धकार से ढक लेती है। रास्ता के लंगूर बांटों  
के रूप में दिखलाई देते हैं। निश्वासों के बाधियाँ चल बसी हैं और लंगूरों के  
प्रलय के बादल लिये हुए हैं। तथा-

मेरी जितवन के उन्झटा तन का पारावार ,  
मेरी वाशा के नव लंगूर झूलों में साकार । २

०

०

मेरे निश्वासों के सखी रहती अकंकाशा  
बाँझ में दिन रात प्रलय के घन वस्त्रे उत्पात ।। ३

१- याना- महादेवी पृ० १३४

२- ,, पृ० १६१

३- ,, पृ० २३५



जायसी ने जिस प्रकार पद्मावती के कारण वे  
हंसी की रचना करवाई है, उसी प्रकार महादेवी जी ने भी प्रिय के नयन-  
निक्षेप से वर्णों की वृष्टि करवाने की चेष्टा की है -

‘ दृष्टि का निक्षेप कर  
रूप रंगों का वरसना । ’ १

महादेवी जी जो जो पीड़ा और वेदना अभिचिंतित हैं उसका कारण जीव वर्णन  
का प्रभाव है। वे प्रिय को दुःख में प्राप्त करना चाहती हैं। संयोग से दूर रह  
कर वियोग में ही जीवन व्यतीत करना चाहती हैं -

‘ तुमको पीड़ा में दूँगा  
तुममें दूँगी पीड़ा । ’ २

०                      ०  
‘ काटूँ वियोग रोते ,  
संयोग समय रिप जाऊँ । ’ ३

बौद्ध दर्शन के प्रभाव से कारण से सर्वत्र दुःख की  
ज्ञाया में व्याप्त देखती हैं-

‘ बाहर-घन-तम भीतर दुःख-तम । ’ ४

भारतीय ललितवाच के प्रभाव से वे प्रिय को अपने  
में ही अन्तर्भूत मानती हैं-

- १- यामा- महादेवी पृ० २२८  
२-            ,,            पृ० ३२  
३-            ,,            पृ० ७७  
४-            ,,            पृ० १३३

भारतीय संस्कृत के प्रभाव से ही प्रिय को अपने  
में ही अन्तर्भूत मानती हैं -

‘तुम मुझ में प्रिय,  
फिर परिचय क्या ?’ १

स्त्री-जागर पर वे अपने को प्रिय से ही निम्न मानती हैं -

‘मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं  
जैसे रश्मि प्रकाश,  
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों  
धन से तद्वि-विलास ॥’ २

मानव-प्रेम

महादेवी जी को कवि कृत्य के साथ साथ नारी  
कृत्य भी प्राप्त है। इस नारी कृत्य के प्रभाव से लगे लगे ही प्रेमिल न स्वर  
साक्षि मानवता को अपने स्नेह-रज्जु में बांध कर लिया है। उनके काव्य में सर्वत्र  
सहानुभूति, वेदना और समानुभूति की भावनाएँ मरी पड़ी हैं<sup>३</sup>। सुःख की भावना  
ने ही उनके लिए संसार को स्वप्न के रूप में बह कर दिया है। वे प्रिय को किसी  
स्वात्ता निभृत स्थान में नहीं लौजती। जन जन की पीड़ा में ही प्रिय को पाना  
चाहती हैं -

‘तुम मानस में बस जाओ किप  
दुख के अन्तुष्कन से,  
मैं तुम्हें दूँ देने के लिए,  
परिचित होऊँ कण कण से ।’ ४

१- यामा- महादेवी पृ० १९२

२- ,, पृ० १०४

३- ,, पृ० ६६० १२ ( भूमिका )

४- ,, पृ० ६०० १० १६२

उनके हृदय की सहानुभूति वृष्णित बधरों, जर्जर जीवन, मुरझाई पत्तों और दुःख के घूँट पीते हुए मानव जीवन के प्रसि व्यक्त हुई है -

‘ देह खिलती कलियाँ या प्यारी हूँ बधरों को  
तेरी चिर याँवन सुखमा या जर्जर जीवन देह । ’ १

वे अपनी चिन्ता न करती हुई सृष्टि की बाँसू की लहरियों की ओर विशेष चिन्तित और सजग हैं ।

### प्रेम-भक्ति

महादेवी जी ने अपने प्रेम निरूपण में कुछ ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं जिनसे उनका प्रेम, भक्ति की सीमा तक पहुँच जाता है । भक्त की तरह प्रिय का पल पल में व्याप्त रहता है। वे स्वतः अपने को मित्र और प्रिय को महान् कहकर अपनी दीनता और प्रिय की परत्ता की स्वीकृति देती हैं। उसकी असीम करुणा के गुण से वे प्रभावित हैं। साथ ही युग प्रथा से भी वे प्रभावित प्रतीत होती हैं, इसीलिए वे पूजा के पारिवि उपकरणों पर विश्वास नहीं करतीं । हृदय की भावनाओं से ही वे प्रिय की अर्चना करती हैं-

‘ क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे ।

मेरी खास करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे ।

फरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-तपन रे ।

अचात पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का नन्दन रे ।

सनेह भरा जलता है फिलमिल मेरा यह दीपक- मन रे ।

मेरे दुःख के तारक में नव उत्पल का उत्पलिन रे ।

धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे ।

प्रिय प्रिय जफ़े अधर, ताल देता फफ़ों का नर्तन रे । १

यहाँ साधक भी है और राज्य भी । मन्दिर ही शरीर और पादोदक की नव नवीर हैं । पीढ़ों का चन्द है और मन का दीपक जल रहा है। निश्चयों की, उसी मन्दिर में धूप वस्तियाँ जल रही हैं । इस मन्दिर में प्रतिमा 'खय'-साधक 'बन जाता है । यह ठीक भी है क्योंकि वे एक स्थल पर कह आते हैं कि 'विरह बना आराध्य दैत क्या कैसी बाधा ' अर्थात् भक्ति की यही चरम परिणति है, जहाँ भक्त और भगवान् तदाकार हो उठते हैं। भेदीकरण समाप्त हो जाता है ।

देश- प्रेम

महादेवी जी का प्रेम स्वदेशानुराग के रूप में भी 'यामा' में प्राप्त होता है । वे अपने बचपन के प्रारम्भ में ही, अपनी कवि-ताओं में भारत माता की आरती उतारा करती थीं । राष्ट्रीय भावनाओं की व्यञ्जना उन्होंने शृंगारमयी अनुरागमयी, भारत जननी माता 'कहकर व्यक्त की है । युग भावना से परिचालित होकर राष्ट्रीय जीवन में नव- जेतना और स्फूर्ति भरने के लिए देश को रोज़े करती हैं-

'चिर सजग बाधें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ।

जाग तुमको दूर जाना ।

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे काँप हो ले,  
 या प्रलय के आसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,  
 आज पी आलोक को डोलें तिमिर की ओर जाया,  
 जाग या विद्युत्-शिखाओं में निहुर तूफान बोलें।  
 पर तुम्हें है नाश-पथ पर निहुर अपने को जानना।  
 जाग तुम्हको दूर जानना।

बाधें लें क्या तुम्हें यह मौम के बन्धन सखी ?  
 पन्थ की बाधा बनें तितलियों के पर रंगिले ?  
 विश्व का कन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुन गुन,  
 क्या हुवा दें तुम्हें यह फूल के ढल नीर-गीले ?

तू न अपनी राह को अपने लिए तारा बनाना।  
 जाग तुम्हको दूर जानना। १

देश का स्तवन करती हुई राष्ट्रीय ममता निम्न शब्दों में व्यंजित करती हुई  
 महादेवी जी का स्वर फूट पड़ता है -

भारत भर विशाल  
 मुझको कह लें दो उदार  
 फिर एक बार,  
 बस एक बार ॥ २

प्रकृति - प्रेम

काव्य में प्रकृति चित्रण तभी से होता वा ग़ा

१- यासा- महादेवी पृ० २३४

२- ,, पृ० ३३

है जब से आदि मानव ने काव्य की रचना की थी। महादेवी जी ने भी उसी प्राचीन परम्परा को अपने काव्य में सजीव करने का यत्न किया है। किन्तु इनके प्रकृति चित्रण की अपनी विशेषता है। प्राचीन संस्कृत कवियों- कालिदास और भवभूति के प्रकृति चित्रण की शैली का प्रभाव छोटे हुए भी इनकी वर्णन शैली अनुठी है। इन्होंने प्रकृति वर्णन अनेक रूपों में किया है। प्राचीन पद्मिनी का परिपालन करती हुई जहाँ वे एक ओर प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन और उपलक्षण-त्मक रूप में चित्र प्रस्तुत करती हैं वहीं पर दूसरी ओर वर्तमान परिपाटी के अनुकूल सजीव, मानवीकरण, आत्माभिव्यक्ति और रहस्याभिव्यक्ति के लिए भी प्रकृति का प्रयोग करती हैं। आलम्बन रूप में प्रकृति के स्वतन्त्र चित्र चित्ताकर्षक हैं।

महादेवी जी की दृष्टि प्रकृति के हृन्दर फलों में ही अधिक रखी है। प्रकृति का उग्र रूप भी उनकी कल्पना और भावना के अनुप्राणित होकर केशव के कठोर काव्य की भूमिका तक नहीं पहुँचा है। आकाश में बादल छाये हैं जिनमें से कुछ पीले कुछ लाल हैं, कुछ सित और श्याम हैं। इनमें से कुछ हवा में तैरते जा रहे हैं तो कुछ पानी के मार से मन्दार गति में चल रहे हैं। आकाश में ये बादल कहीं कहीं पर अन्धकार की तरह जागे हैं तो कहीं पर भूरे रुई के ढेर से फैले हैं। यथा-

कुछ पिं, वरुण, कुछ सित श्यामल

कुछ सुन चील कुछ दुख मंथर

फैले तम से कुछ तूल विरल

मँडराते सत सत अलि बादल । १

संसार की चाणभंगरता उसको फड़ता हुआ सुमन, सूखा हुआ वृष्ण, विकल कोकिल और प्यासा चातक कह रहा है जिसे दिन भी नहीं पढ़ सका था-

एक बड़ी गा लू प्रिय में भी

मधुर बेचना से भर अन्तर ,

दुःख ही सुखमय दुख ही सुखमय

उपलब्धों पुलकित से निर्भर ,

मरु ही जाने उर्वर नायक ,

गा ले दो बाण भर नायक । १

महादेवी जी ने मानवीकरण के रूप में भी प्रकृति के चित्र लीये हैं। उनकी प्रकृति मानव भावनाओं से परिपूर्ण है। उन्हें प्रकृति के बीच भी मानवीय व्यापार-व्यापार परिलक्षित होते हैं। पावस झू में उमड़ने वाली घटा का चित्रण एक नायिका के रूप में किया है जो अपने प्रेम का प्रतिदान भी प्राप्त करती है। इस घटा रूपी नायिका के काले कटाचा हैं, इन्द्रधनुष की भ्रष्टियाँ हैं। समस्त शरीर पर विद्युत्-पाउडर लगा है। नीले मेघ सण्ड का लम्बा चंचल बाकास में उड़ रहा है। यह घटा नायिका प्रिय से मिलने जा रही है। इसलिए उत्सव भी मनाया जा रहा है। पक्षियों का स्मूह गान कर रहा है। नफल नृत्य कर रही है, जिसके चंचल पग जल तरंगों में फटते हैं। अर्थात् जल तरंग का नृत्य हो रहा है। अब देखिये घटा नायिका नम-नायक से मिलने के लिए आ गई है। सारा उत्सव एक दम समाप्त हो गया। रस की वर्णा हो गई। तिलकियों के बलय और हार सुरति डीढ़ा में विन्न भिन्न हो गई। चिरि हुए मेघ सण्ड रूपी कंचुकी भी फट गयी। केश कलाप भी बिखर गया और उड़का रोम रोम रोमांचित हो उठा।

वतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सफल उपमा के प्रयोग द्वारा कवयित्री अपने जीवन की बेचना को एक तुल्य

हृण ३ व्यक्त कर दिया है कि वह पाठकों के लिए अनुभूत होने हुए भी सम्पन्नः अनुमेय बन गई है। इस प्रकार उन्होंने प्रकृति का उत्कार रूप में भी सफल प्रयोग किया है।

महादेवी जी के प्रा विषयक मान्यता के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। आपके प्रेम को पूर्णतः अलौकिक और लौकिक प्रभाव से सर्वथा मून्य मानता है। जो कुछ विद्वान् उसे मूलतः लौकिक ही मानने के पक्ष में है तथा कुछ लौकिक और अलौकिक उभयपक्षीय मानते हैं। जैसे इस तथ्य में कोई संका नहीं करनी चाहिए कि महादेवी जी वाणी से बात का प्रमाण है कि वह आध्यात्मिकता की रुधा से पूर्ण वीतप्रोत लगती हैं। और उनकी कविता अध्यात्मिक वेदना की मधुर वाणी रही जा सकती है। कविवित्री की कविता अपार्थिव चेतना के भार से फूटी है। महादेवी जी की प्रेम भावना न तो स्वान्ततः अलौकिक है और न लौकिक। उनका प्रेम जो रहस्यवादी रूप में सुललित हुआ है वह लोक निरपेक्षा और लोक वाक्य मात्र है, वह कम ज्वलता है, रहज ही तर्कना इस विचार से वास्तविक नहीं हो पाती है, अर्थात् नन्ददास की गोपियों के शब्दों में अन्त में हम यही कवि को विचार होते हैं कि "बीज बिना तरु जमें कहाँ तुम मोहि कहाँ ते ?"



### ‘यामा’ में रहस्यवादी परिकल्पना

सृष्टि के आदि क्षणों में प्रकृति रूप माहुर्य, व्यापक सौन्दर्य, असीम विस्तार तथा परिवर्तनशीलता विभिन्नता में जीवनशील मानव ने अपनी स्थिति को असीम तथा शान्त समझा, उस परिमय से अपना तारतम्य स्थापित करने का प्रयास किया तो उसकी चेतना के किसी मूलौकिक व्यक्तित्व की अनुभूति मिली। ज्यों ज्यों उस व्यक्तित्व का सर्पण पाने का प्रयास हुआ त्यों त्यों वह सीमातीत होता गया। इस परिणामति में मन, बुद्धि आदि ने जो प्रयत्न किये उनमें दिव्यातिदिव्य, अजण्ड, ज्ञान से रहस्य को सुलझाने की प्रवृत्ति ही प्रमुख रही।

रहस्य को सुलझाने के प्रयास में दर्शन तथा विज्ञान ने नानाविध मतों को जन्म दिया। संसार भर में अनेक धर्मों का जन्म भी उस रहस्य को समझने के प्रयास मात्र ही थे किन्तु किसी से भी मानव को न तो तृप्ति हुई और न ही उक्त रहस्य का निश्चित निराकरण हो सका। इसका कारण था मानव व्यक्तित्व का सर्पण आवश्यक है, सर्पण का आधार होता है - अनुराग। जब तक प्राप्य के साथ मन का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके, पूर्णसर्पण आत्म-समर्पण अथवा आत्मनिवेदन न हो तो मन की तृप्ति असम्भव होती है। उस रहस्यमय, अज्ञात, असीम तथा अकल्पित के साथ रागात्मक सम्बन्ध भी रहस्य से कुर कम नहीं होता, इसलिए काव्य में ही रहस्यवाद कहा गया है।

रहस्यवाद भारतीय दर्शन तथा विज्ञान के क्षेत्र में तो चिर-परिचित है किन्तु काव्य में इसका प्रयोग शाश्वतिक रूप में हो चुका। रहस्यवाद का उद्गम भी कुर कम रहस्यपूर्ण नहीं।

“ रहस्य ” शब्द का भावार्थिक अर्थ है- गुह्यभेद, गोपनीय विषय, मर्म, भेद, निर्जन, स्कान्त में अद्विष्ट वृत्ति, दुर्बोध्य तत्त्व, आदि । इन शब्दों में से गोपनीय विषय तथा “ दुर्बोध्य तत्त्व ” शब्द हमारे निर्धारित विषय को स्पष्ट करने में काफी सहायक सिद्ध होंगे । “ रहस्य ” के अतिरिक्त दूसरा शब्द है - “ साधना ” । इस प्रकार दोनों शब्दों को मिला कर अर्थ की ध्वनि निकली अव्यक्त विषय की साधना अर्थात् उसके आत्मसात् करने का प्रयत्न । यह अव्यक्त अथवा दुर्बोध्य विषय है- ब्रह्म, जो अनन्त, अनादि, अजर और अमर है। साधक अपनी विभिन्न साधना प्रणालियों में इसी की साधना करता है। इसी साधना में साधक को अपनी चित्तवृत्तियों को दूर की भाँति बाहर से खींचकर भीतर लाना पड़ता है, उन्हें अन्तर्मुखी बनाना पड़ता है । अपनी अन्तःस्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा सत्य, परमतत्त्व अथवा ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है ।

विद्वानों ने इस ऐतिहासिक जाति, ईश्वरार्पण, वैदिक दर्शन, देवदारी प्रथा आदि विभिन्न प्रोतों से उद्भूत माना है। कुछ लोगों ने इस मिस्टिसिज्म का पर्यायवाची मानकर अपनी मत को स्थापित किया है । यह सत्य है कि रहस्यवाद पर वैदिक युग से लेकर आज तक बहुत ध्यान दिया गया है किन्तु यह मानना पड़ता है कि प्राचीन रहस्यवाद और वर्तमान रहस्यवाद में पर्याप्त अन्तर है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में नाहुर्, करुणा, कल्पना, गम्भीरता, सौन्दर्य तथा प्रेम के सूक्ष्मातिशय रूप की व्यक्ति इसी वाद में हुई है, फिर भी हिन्दी के विद्वानों में इससे विचार में मतभेद नहीं है। रहस्यवाद की परम्परा, खरूप, दर्शन तथा विशेषताओं का सम्यक् अध्ययन करने के लिए हम कुछ विद्वानों के मतों का अवलोकन करेंगे ।

भाचार्य रामचन्द्र सुबल

“ जो चिन्तन के क्षेत्र में धर्मवाद है वहीं, भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है। ”

डा० रामकुमार वर्मा

“ रहस्यवाद जीवात्मा की उस अनिर्मित प्रकृति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और भौतिक शक्ति से अपना सन्त और निर्दल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। ”

३- श्री जयशंकर प्रसाद

“ काव्य में वात्मा की संस्फूर्त मूल प्रभुति की मुख्य धारा रहस्यवाद है। ”

डा० कैदरी नारायण सुबल

“ रहस्यवाद विश्व की परम सत्ता का स्वरूप और साक्षात्कार है। ब्रह्म या ईश्वर के वात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार ही रहस्यवाद कहलाता है। ”

श्री सान्तिप्रसाद द्विवेदी

“ निखिल दृष्टि में एक परम सत्ता का आभास रहस्यवाद है। ”

डा० नगेन्द्र

“ हमारे कवियों का रहस्यवाद उनकी आध्यात्मिक वात्मानुभूति का फल तो किसी प्रकार नहीं हो सकता। रहस्य प्रकृति के कारण उनकी वृत्ति हमें काफी रूढ़ी और अफिरक प्रकृत से चिन्तन शक्ति के बल पर उन्होंने इन रहस्यमय प्रश्नों पर काव्य का सुन्दर आभरण तो सुचारु रूप से बढ़ाया। ”

### श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय

“ रहस्यवाद हृदय की एक दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव अस्तित्व से ऊपर उठकर एक सपार्थिव महा अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है। ”

### श्री परशुराम चतुर्वेदी

“ रहस्यवाद शब्द काव्य की एक पारा विमर्श को सूचित करता है। वह प्रमानतः उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्षा, गम्भीर एवं तीव्र अनुभूति के साथ सम्बन्ध रखती है। ”

### श्री विश्वम्भर मानव

“ “ काव्य में आत्मा परमात्मा के प्रणय-व्यापार को रहस्यवाद कहते हैं। ”

डा० सरनाम सिंह शर्मा “ वरुण ”

“ रहस्यवाद का अभिप्राय उस स्थिति या अवस्था से है जिसको हम भली प्रकार समझ न सकें। ऐसी स्थिति और अवस्था का अंग्रेजी में ‘मिस्ट’ कहा जाता है। ”

### आचार्य नन्द दुलारि बोंजपेयी

“ एक वाक्य, अव्यक्त चेतनत्व जिसे विद्वानों में भी कोई भेद किसी प्रकार सम्भव नहीं, जिस चिर-स्थिर आत्म-सत्त्व के अविचल गौरव में संसार की उच्चतम अनुभूतियों भी परीनिका सी प्रतीति होती हैं, वह परिपूर्ण आह्लाद जिसमें स्थित वर्गों के लिए कोई अवकाश नहीं, रहस्यवाद का सर्वोच्च निरूप्य है। ”

### श्रीमती महादेवी वर्मा

“ जब प्रकृति की अनैकहृप्ता परिचर्यामयी विभिन्नता में, कवि ने एक ऐसा तारताम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक ओर किसी असीम चेतन में और दूसरा उसके समीप हृदय में उभाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक धँस एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा, परन्तु इस सम्बन्ध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग जनित वात्स विचर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सारा नहीं छो पाते और जब तक यह नश्वरता सीनातीति नहीं हो पाती तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनैकहृप्ता के कारण पर एक नश्वर व्यक्तित्व का आरोप कर उसके निकट वात्स निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा गोपान बना, जिसके रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया। ”

उपर्युक्त विचारों में यह तो स्पष्ट है कि रहस्यवाद में किसी ज्ञात, अलौकिक, असीम, व्यक्तित्व के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं, किन्तु उसके उद्गम तथा आधार पर मतभेद हैं। सुकन जी ने रहस्यवाद को अभासीय प्रकृति मानते हुए इसे फारस, इंग्लैंड तथा बंगला साहित्य तथा जीवन दर्शन से प्रभावित अथवा प्रभूत माना है।

डा० नगेन्द्र तो रहस्यवादी काव्य में लाञ्छनात्मकता का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते। उनके विचार में तो कवियों ने अपनी अत्यन्त प्रभूत गुणों से इस कविता में रहस्य का चित्रण मात्र किया है। कुछ कवितां किसी अलौकिक के प्रति आकर्षण में तथा कुछ अन्य देवत भावनाभिप्रेत का एक दर्शन मात्र ही मानते हैं। प्रसाद जी ने अपनी संक्षिप्त ही परिभाषा में इस काव्य की रूप धारा स्वीकार किया है, किन्तु महादेवी जी ने रहस्यवाद का विवेचन समीप से,

इसके उद्गम , स्वरूप तथा विशेषताओं का स्पष्ट वर्णन किया है। जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो इसे शुद्ध भारतीय परम्परा मानते हुए उपनिषदों को ही रहस्यवाद का मूल स्वीकार किया है। इसके लिए हमें रहस्यवाद के विविध स्वरूपों तथा प्रोनों पर दृष्टिपात कर लेना समीचीन प्रतीत होता है।

पराविषा अथवा ब्रह्म विषा में रहस्यवाद का अङ्कुर प्राप्त होता है। वेदान्त के जैत, अद्वैत , विशिष्टाद्वैत आदि में आत्मा-परमात्मा , लोक- परलोक, जीव- जगत् आदि पर जो विचार हुआ है वह बुद्धि प्रधान है। यह ठीक है कि बौद्धिक प्रक्रिया में भी अत्यधिक तन्मयता हो जाती है किन्तु हृदय की रागात्मक वृत्ति सुदृढिजन्य सभी विकारों आवा मत्वादों को अपने में समाहित कर लेती है। हृदय की माधुर्य भावना के बिना सतीम- अतीम के परस्पर सम्बन्ध की स्थापना सम्भव नहीं होती। योग साधना भी एक प्रकार का रहस्यवाद है किन्तु इसमें बौद्धिक तथा हृदयगत भावों की अपेक्षा शारीरिक साधना प्रमुख है। शरीर के आन्तरिक चक्रों का ज्ञान अथवा वियोजन तो होता है किन्तु जिस माधुर्य से सामीप्य के कल्पित रूप की अवतारणा होती है उसका अभाव ही रहता है। अवतारवाद की मान्यता के साथ ही रहस्य भावित में भी कुछ लोगों को रहस्य का आभास होता है, किन्तु अवतारवाद भरे ही रहस्य प्रकृति जगत्ता ही आत्म-निवेदन अथवा समर्पण के आश्रय का सतीम रहस्य की वृत्ति से भेल नहीं खाता। अतः रहस्यवाद के लिए आवश्यक है कि साधक भाव का आत्मनः दिव्यातिदिव्य, कण्ठ तथा कसीम ही बाहिर।

ऐसेटिक धर्म भावना में रहस्यवाद के उद्गम का प्रतिवाद करते हुए भी जयशंकर प्रसाद ने स्पष्ट किया है कि - " साम देव के यहूदी, जिनके पैगम्बर मूसा इत्यादि थे, सिद्धान्त में ईश्वर को उपास्य और मनुष्य को जिहोवा ( यहूदियों का ईश्वर ) का दास मानते थे। " ऐसेटिक धर्म में ईश्वर से समता करना अपराध था, इसी अपराध के नाम पर द्राष्ट को सूली

पर लटका दिया गया था। परवर्ती सुसल्लानों, जो धार्मिक दृष्टि से मूर्ख-  
दियों से बहुत कुछ समता रखते थे, ने 'वनतहक' की घोषणा करने वाले  
महूर को पूली पर चढ़ाया, सरमद का सिर कटवा दिया। जब ईसाई से सल्लान  
का सम्बन्ध स्थापित नहीं दिया जा सकता तो वहाँ रहस्यवाद का जन्म संभव  
असम्भव है।

कुछ विद्वान् मेसोपोटामिया का वास्तविक प्रेम तथा  
ईश्वर प्रभुति देवताओं के मन्दिरों में रहनेवाली देवदारियों के धार्मिक प्रेम तथा  
माधुर्य भावना से रहस्यवाद का उद्गम स्वीकार करते हैं। उनके मत में धर्म और  
प्रेम का मिश्रण उपासना में कामोपमोग तथा उन्ने उत्पन्न मानवियों का मूल  
उपरोक्त माधुर्य भावना ही है, जो ईसाई धर्म के माध्यम से वैष्णवों को प्राप्त  
हुई। किन्तु उन्हें भारतीय परम्परा में काम का महत्व तथा स्वरूप ज्ञात नहीं।  
ऋग्वेद काल में - कामऋग्ने समवर्तताधि मनसोरितः प्रथमं यदासीत् - 'कहकर दृष्टि  
के उद्गम में उसका महत्व स्थापित किया गया है। वैदिक काव्य का वर्ण अत्यन्त  
व्यापक है, इसे वागम सास्त्रों में कामकला के रूप में स्थापित कर उपासना, सौन्दर्य,  
जानन्द तथा उत्साह भाव की साधना प्रणाली का रूप दिया। परवर्ती सूफी  
साधकों ने भी इसके महत्व को स्वीकृत किया। अतः इसे देवदारी प्रेम की माधुर्य  
भावना से उद्भूत समझना भ्रान्ति मात्र है।

सूफी मत के रहस्यवाद में अज्ञान ही प्रेमसहित  
आत्मानुभूति और निरन्तर प्रियतम का विरह समाविष्ट है, परन्तु साधनाओं  
और जम्यातों में वह भी योग के समकक्ष रखा जा सकता है। सूफी मत सुसल्लानों  
धर्म के अन्तर्गत वह विचारधारा है जो अरब तथा सिन्ध के परस्पर सम्पर्क के विक-  
सित हुई। इस मत का पूर्ण विकास ईरान में हुआ, भारतीय वर्णन का इस पर  
पर्याप्त प्रभाव भी रहा किन्तु वाचार्- व्यवहार की दृष्टि से यह अज्ञान का  
ही अनुकरण मात्र है। इस्लाम में रहस्यवाद की मान्यता है, किन्तु विचार  
स्वातन्त्र्य नहीं, इसलिए उनका चिन्तन रेकान्तिक ही रहा। जायसी कादि

कवियों ने अपनी स्वान्तिक अनुभूति को मिलन- विरह की मधुर भाविका तथा अलौकिक लोक की कल्पना से युक्त बनाकर अभिव्यक्त किया किन्तु यह एक भावात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। भारत में योग- मार्ग का वाधनात्मक रहस्यवाद था अथवा वद्वैत दर्शन पर आधारित, जो हमारे तत्त्व चिन्तन तथा बुद्धि प्रयास से प्रभावित होकर भी भाव क्षेत्र में उसे पूर्णतया अपना नहीं सका। इसे दो जातियों, धर्मों तथा संस्कृतियों के सहज- सम्पर्क का फल कह सकते हैं।

भारतीय रहस्यवाद का मूल उपनिषदों के ज्ञान काण्ड में मिलता है। वैदिक काल में प्रकृति पूजा अथवा बहुदेववाद के प्रारम्भ के साथ ही आत्मवाद की प्रतिष्ठा हो गई थी। आत्मवाद में आनन्द भोग को विशेष महत्त्व दिया गया। यहाँ तक कि आनन्द भावना, प्रिय कल्पना और प्रमोद हमारे जातीय गुण बन गये। उपनिषदों के प्रभाव से ही पाण्डों की अवतारणा होने पर आनन्दमय कोण की खोज होती रही। वैष्णवों के आनन्द- वाद में इसी की प्रतिष्ठा हुई। भक्ति के प्रारम्भिक स्वरूप में भी इसी आनन्द का प्रभाव दिखाई देता है। परवर्ती बौद्ध, जैन सम्प्रदायों में भारतीय चिन्तन के जितने भी सोपान आये, सभी में उस आनन्द तत्त्व की प्रतिष्ठा कम न की सकी। गीता का सर्ववाद प्राचीन प्रकृतिवाद को और भी पुष्ट कर गया। परिणामतः विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुर मात्रा में मिला। चिन्तन की यह परम्परा भाव क्षेत्र में ज्यों- ज्यों विकास करती गई, रहस्यवादी काव्य धारा का भी तदनुरूप विकास हुआ। कवीर नादि सन्तों, वैष्णव भक्तों, सूफी सन्तों से होते हुए आधुनिक काल में रहस्यवाद, प्राचीन धार्मिक वाधाय को जोड़कर, दार्शनिक तथा भावात्मक रूप की पूर्णता को लेकर पूर्ण प्राप्ति प्रयोग से विकसित हुआ है। श्री जगन्नाथ प्रसाद के शब्दों में- "इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता, प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा सब का सब में समावेश करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का रासन बनकर इसमें सम्मिलित है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं।"



श्रीमती महादेवी वर्मा ने रहस्यवाद की विभिन्न प्रवृत्तियों का अत्यन्त सहज तथा प्रभावशाली विवेचन करते हुए रहस्यानुभूति को ज्ञान-क्षेत्र के सिद्धान्त की दृश्यगत कोमलतम भावनाओं में प्रतिष्ठित माना है। कवीर के हठयोग की साधना रूपी सम-निष्कम शिलाओं में दर्शन और जायसी के विशद प्रेम विरह का कोमल भावनाओं में आवृत बाधुनिष्ठ रहस्यवाद काँतूताली युग में भी अनाहत नहीं हुआ। इसका कारण है तौदिक तथा तन्वीकिय क्षेत्र में मानव की रहस्यानुभूति प्रवृत्ति। कवयित्री का विश्वास है कि, "हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पन्दनहीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर, कदाचित् फिर चिर स्नेहन रूप सक्षिय भावना में जीवन के परमाणु जोजने होंगे।"

मनुष्य की अन्तःशक्ति भी रहस्यपूर्ण है, वह बाह्य जगत् के विकास, व्यक्त सौन्दर्य के विस्तार के साथ ही मानसिक तथा अव्यक्त जगत् की सूक्ष्म भावनाओं का अनुष्ण तथा भावन सही रहती है। प्रत्यक्षा तथा अप्रत्यक्षा से सम्बद्ध अनुभूतियाँ ही कंठ समावेशी, सौन्दर्य से तृप्त-कार करने वाले कलाकार तथा कवी के लिए सर्पित साधक कला भक्त उत्पन्न करती हैं।

अनन्त विश्व के अनन्त तथा कल्पित जीवन का कोई स्वरूप नहीं होता। अपनी अपनी अनुभूति के आधार पर ही मानव को सम्बद्ध स्थापित कर आत्मनिवेदन अथवा आत्म-समर्पण करता है। अपने ही अन्तर्जाल की प्रतिकृति खोजते हुए प्रकृति के विशिष्ट सौन्दर्य में रूप प्रतिष्ठा, बिन्दु रूपों में गुण प्रतिष्ठा और सबकी समष्टि में एक व्यापक की प्रतिष्ठा करते हुए चिर रहस्यानुभूति का प्रतिफलन होता है, उसका द्रष्टव्य विकास भारतीय जीवन-दर्शन तथा परम्परा में ही प्राप्त होता है। महादेवी वर्मा के शब्दों में -

"रहस्यानुभूति भावाविम की धाँगी नहीं, बरन् ज्ञान के अनन्त आकाश के नीचे अजस्र प्रवाहमयी विवेणी है, इसी के कारण तत्त्व-

वर्णक बौद्धिक तथ्य को हृदय का सत्य बना सके । ”

रहस्यमयी काव्य का प्रारम्भ दो प्रकृति के मानव और अनिर्वचनीय सौन्दर्य के पीछे किसी अज्ञात सत्ता की अनुभूति है। अत्यन्त असीम से व्यक्त ससीम के रागात्मक सम्बन्ध की अनुभूति तथा साधारण जीवन में सामीप्य के अभाव में, केवल प्राकृतिक सौन्दर्य के साध्य से समस्तता का प्रतिपादन ही प्रयत्न कहलाता है। दिव्यातिदिव्य ज्ञान की अनुपलब्धि में विरह व्यथा से पीड़ित मन जब पीड़ा को ही सर्वोच्च वास्तव माने सफल होता है तो उस स्वात्मकता को ही रहस्यवाद की अग्रगण्यता कहा जाता है।

सामान्यतः रहस्यवाद इस नीति नीति का बोध है अर्थात् जहाँ ससीम असीम से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु अज्ञान भाव की अभिव्यक्ति करता है, वात्मा-परमात्मा, साध्य-साधक, लक्ष्य-उपाय-उपासक की अभिन्नता का भावन करता है, किन्तु पाश्चात्य विज्ञान-उपकरण ने रहस्यवादी कवियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है - “ भक्ति सम्बन्धी, दर्शन सम्बन्धी, प्रकृति सम्बन्धी, प्रेम सम्बन्धी, सौन्दर्य सम्बन्धी तथा शिशु-सम्बन्धी । वास्तव में यह वर्गीकरण पदार्थ भावना की प्रकृति पर आधारित है। ससीम असीम से किस प्रकार के सम्बन्ध की कल्पना करता है अज्ञात असीम के जिस गुण की ओर वह अधिक आकृष्ट होता है, यह वर्गीकरण उसका ही प्रतीक है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भी रहस्यवाद का नाम अधिक प्रचलित हुआ है। सर्वोच्च अर्थों परमात्मा, निर्माणा, महादेवी, वगैरह, रामकृष्ण वगैरह तथा पन्त आदि कवियों में रहस्य भावना का प्रचुर प्राप्ति होता है किन्तु यहाँ पर हमारा लक्ष्य महादेवी वृत्ति “समस्त” में रहस्यवादी परिकल्पना पर दृष्टिपात करना है ।

“यामा” का प्रारम्भ भी ही रहस्यवादी काव्य में ईश्वरीय सत्ता के प्रसार के प्रति विश्वास, साधक की निर्माणा-वृत्ति अज्ञान पक्ष पर अग्रसर होने पर उसकी विविध अनुभूतियाँ और विरह जिनका लक्ष्य

----- अन्ततः जीव और ब्रह्म के मिलन के अन्तर्विकास विभिन्न भावों का व्यापक चित्रांकन करती हैं । इसी प्रकार जब राक्षस विना की शक्तों को चाँदनी से धो देता है, कलियाँ लपकती हैं और मधुमास नवमी का एक मधुमास का मुख्य पूजा है, जीवन में उत्साह और आनन्द के स्वप्न जगने वाली मया-करुणा को देखकर कवयित्री का मन भी किसी बलौकिक पीढ़ी में मग्न हो जाता है। पीढ़ी को मैल का प्रयास हुआ तो स्मृतियाँ भी तीव्र होती गइं और अन्त में अनुभूतिशील मन गा उठा-

“ निशा को , धो देता राक्षस

चाँदनी में जब अलकें खोल ,

कली से कहता था मधुमास

बता दो मधुमदिरा का मौल ,

०

०

नहीं अब गाया जाता देव ।

थकी अंगुली , हैं ढीले तार,

विश्ववीणा में अपनी आज,

मिला लो यह अस्फुट मंकार । ” १

महादेवी जी ने भी व्यक्ति के इस बड़ी अन्तर्विकास को चित्रित करने की प्रेरणा वहीं से ली है, किन्तु क्षायावादी सूक्ष्म कथन शैली से प्रभावित होने के कारण उनकी वर्णन की रीति प्राचीन रहस्यवाद-चित्रण की प्रणाली से पर्याप्त भिन्न रही है। उन्होंने जीव को प्रारम्भ से ही आत्म सजग दिखाते हुए उसे परमात्म-सत्ता के विरह में व्याकुल दिखाया है। सृष्टि के सौन्दर्य-विकास के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने की उन्हें प्रारम्भ से ही उत्कट अभिलाषा रही है। उदाहरण-स्वरूप उनकी निम्नलिखित काव्य पंक्तियों में सृष्टि के विभिन्न

दृश्यों के विकास के प्रति सहज विस्मय- भाव देखिए-

‘कनक से दिन, मोती सी रात,

सुनहली साँझ गुलाबी प्रात ।

मिटता रंगता बारम्बार,

कौन जग का वह चित्राधार ? १

उपर्युक्त भाव- स्थिति के उपरान्त साधक की अनवरत साधना के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व में स्वभावतः प्रौढ़ता का समावेश होता है और वह अनुभूति तथा चिन्तन का आश्रय लेकर रहस्य प्राप्ति की ओर क्रमशः अग्रसर होने लगता है। महादेवी जी ने साधक की अनुभूतियों के विकास की ओर उपर्युक्त ध्यान देने का प्रयास किया है। इस सृष्टि से उनके काव्य का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि उन्होंने अपनी रहस्यवादी विचारधारा को गहनता प्रदान करने के लिए अनुभूति चित्रण का व्यापक आश्रय लिया है, किन्तु इसमें उन्हें सफलता और असफलता दोनों ही की प्राप्ति हुई है। जहाँ एक ओर उन्होंने साधक की प्रमानुभूति का मार्मिक चित्रण करते हुए अन्ततः उसे बाह्य दर्शन का परित्याग कर अन्तःदर्शन का सन्देश प्रदान किया है वहाँ दूसरी ओर कुछ स्थलों पर उनकी अनुभूति शिथिल होकर रह गई है। अनुभूति के सफल ग्रहण ने उनकी आत्मा के सत्य को निरावृत्त कर दिया है और उसकी असफल प्रतिपत्ति के कारण उनके गीतों में कतिपय स्थलों पर अनुमान और अनिश्चितता की समष्टि हो गई है। यथा-

‘क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर

मेरा लघुतम जीवन रे ।

मेरी खास करती रहती

नित प्रिय का अभिनन्दन रे ।

पदरज को धोने उमड़े आते

लोचन में जल- कण रे ।

अघात पुलकित रोम,

मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे ।

स्नेह मरा जलता है फिलमिल

मेरा यह दीपक-मन रे ।

मेरे वृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे ।

धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे ।

प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का

नर्तन रे । १

ईश्वर के स्वरूप के प्रथम सकेत प्राप्त होने पर साधक का मन ईश- दर्शन की विकल्पा का अनुभव करने लगता है। इसी कारण रहस्यवादी काव्य में साधक की विरह- वेदना के चित्रण के मुख्य स्थान प्राप्त रहते हैं। महादेवी जी के काव्य में इस विरह-स्थिति का व्यापक विकास उपलब्ध होता है। विरहानुभव की तीव्रता और मधुरता उनके काव्य में इतनी व्याप्त रही है कि उन्होंने इसके समक्षा ईश- मिलन के अमर आनन्द की प्राप्ति को तुच्छ माना है। उन्होंने विरहिणी आत्मा को अनेक आशा-आकांक्षाओं से युक्त दिखाया है। कभी वह प्रिय मिलन के सुख को प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करती हैं, कभी अपने अस्तित्व को सर्वथा विलीन कर ईश्वर से तदाकार हो जाना चाहती हैं और कभी अनन्त समय तक विरह व्यथा में लीन रहना चाहती हैं। इसी प्रकार उन्होंने विरहावस्था में निजी गौरव की व्यंजना उपस्थित करते हुए भी सर्वथा मौलिक भाव प्रदर्शित किये हैं। यथा-

“ चिन्ता क्या है, हे निर्मम ।

बुझ जाये दीपक मेरा,

हो जाएगा तेरा ही ,

पीड़ा का राज्य अन्धरा ॥ १

महादेवी जी अपने रहस्यवादी काव्य में प्रेम-मिलन के लिए उद्भेग तथा विकल्पा का सुन्दर परिचय दिया है। वास्तव में उन्होंने प्राचीन रहस्यवादियों की भांति एक ओर तो शई- मिलन के लिए आत्मा के उद्भेग का चित्रण किया है और दूसरी ओर वर्तमान युग के छायावाद- प्रभावित रहस्यवादी कवियों की भांति निराशा की मनोवृत्ति का परिचय देते हुए ईश्वर के चरणों में प्राण -विसर्जन करने की कामना भी व्यक्त की है। साधारण दृष्टि दृष्टि से यह स्थिति अस्थिरता की द्योतक प्रतीत होती है, किन्तु वस्तुतः ऐसा है नहीं । इससे महादेवी जी के चिन्तन की गहनता की सूचना ही प्राप्त होती है। छायावादी कवयित्री होने के कारण अपने रहस्यवादी काव्य में उसी पूर्णतः अस्पृष्ट रह सकना उनके लिए व्यावहारिकता की दृष्टि से असम्भव ही था । ऐसी स्थिति में रहस्यवादमें छायावाद की निराशा और पलायन वृत्ति का ज्यों का त्यों समावेश कर देना कदापि शोभनीय नहीं होता । अतः उन्होंने इस निराशा को ईश्वर के चरणों में प्राण विसर्जित करने की कामना का रूप प्रदान कर निश्चय ही प्रशंसनीय कार्य किया है।

“ यामा ” में प्राचीन रहस्यवादी सिद्धान्तों में नवीन जीवन दृष्टि का समन्वय करने की चेष्टा अन्यत्र भी प्राप्त होती है । उन्होंने आत्मा और परमात्मा के मिलन की विविध स्थितियों पर अनेक कविताओं में प्रकाश डाला है। यह स्थिति विभिन्नता मूलतः उनके आत्म विकास की सूचना देती है और इसके आधार पर हम उनके रहस्यवादी काव्य के विषय में एक निश्चित मत की स्थापना कर सकते हैं। उन्होंने ईश्वरीय मिलन की चाणिकता

के विषय में सके स्वर प्रकट किया है और इस प्रकार के मिलन को चिरञ्ज्याकुल बनाने वाला माना है। किसी किसी स्थान पर उन्होंने कविवर मलिक मुहम्मद जायसी की भाँति मिलन से पूर्व साधक के हृदय में सजगता के अभाव का वर्णन करते हुए उसे मिलन से वंचित होते हुए भी दिखाया है। यथा-

“ मिलन बेला में अलस, तू  
सो गई कुल जाग कर जब ,  
फिर गया वह स्वप्न में,  
मुस्कान अपनी आँक कर तब । ”

यद्यपि यह सत्य है कि महादेवी जी ने अपने काव्य में भावनात्मक रहस्यवाद को स्थान प्रदान किया है, तथापि उनकी रचनाओं में यत्र तत्र दार्शनिक सिद्धान्तों की प्रासंगिक अभिव्यक्ति भी उपलब्ध हो जाती है। इस ओर मुख्य रूप से ध्यान न देने पर भी वह इससे विमुख नहीं रही हैं। उन्होंने अद्वैतवाद, द्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद को लेकर अपने काव्य को विशिष्ट चिन्तन-समृद्धि प्रदान की है। इनमें से उन्होंने अधिकतर अद्वैतवादी सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने अपनी कविताओं में सर्वान्तर्यामि का भी समर्थन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर की सत्ता की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन किया गया है। यथा-

“ सभी में है स्वर्गीय विकास ,  
वही कोमल कमनीय प्रकाश ।। ”

महादेवी जी ने लौकिक प्रतीकों के माध्यम से अलौकिक तत्त्वों का स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने अपने रहस्यवादी काव्य को मधुर भाव से सम्बद्ध रखते हुए उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक पैली का व्यापक प्रयोग किया है और इस दिशा में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने ईश्वरीय प्रेम में लीन होने पर जाणिक संसार सुख की ओर आकृष्ट

करने वाली विविध तृष्णाओं का विस्मरण कर महामिलन की इच्छा को व्यक्त किया है। यह मिलन ही पूर्ण सुख अथवा शान्ति प्रदान करने वाला है। अतः इसकी उपलब्धि के लिए विविध सम्भव विधियों का कथन ही उनके काव्य का मूल णिय है। उन्होंने अपनी रहस्यवादी कविताओं में आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को पति के रूप में उपस्थित किया है। यह पद्धति भक्ति काल में महात्मा कबीर के काव्य में भी उपलब्ध होती है। महादेवी जी ने इसका आशय लेते हुए अपनी रचनाओं में जीव और ईश्वर के मध्य सहज प्रेम-वृत्ति की स्थापना की है। इस प्रेम कथन में उन्होंने मान-माचना का भी समावेश किया है। यथा-

“सजनि, मधुर निजत्व दे,  
कैसे मिलूँ अभिमानी में ? १

महादेवी जी “उसी में आदि वही वही अवसान” कह कर सृष्टि निर्माण का जो क्रमिक विकास बताया है वह भारतीय दर्शन के सर्वथा अनुकूल है -

“हो गया मधु से” सिन्धु “अगाध  
रेणु से वसुधा का अवतार  
हुआ सौरभ से नम वपुमान  
और कम्पन से वही बयार ।

कवयित्री के हृदय की यही जिज्ञासा उनके रहस्य-वाद का सौपान है। उनकी जिज्ञासा इतनी प्रबल बन गई है कि वह अज्ञात को ज्ञात की परिधि में बांध लेना चाहती है। यथा-

“और यह विस्मय का संसार  
बखिल वैभव का राजकुमार ।



धूलि में क्यों खिलकर नादान,

उसी में होता वन्तधर्मान ॥ १

उस असीम अज्ञात की ईषात् स्पन्दन उनके हृदय में व्याप्त हो चुकी है। उनके हृदय में प्रेम का शतदल विकसित हो रहा है। अतः प्रिय का रहस्यमय खेल कव-  
यित्री के लिए चकवी की रजनी बन रहा है। प्रतीत होता है कि रहस्य का फटा  
उठने वाला है और रहस्य की चिर रजनी अचिर ही विलीन होने वाली है-

‘वही कौतुक रहस्य का खेल ,

बन गया है असीम अज्ञात

होगई उसकी स्पन्दन एक

सुफे अब चकवी की चिर रात । ’ २

जिस प्रकार तमसाद्धान्त निशा में आसन्नवासी चकवे से चकवी का मिलन नहीं  
हो पाता है। विरह वेदना में उसे रात्रि भी वामन के दीर्घ चरण की तरह  
प्रतीत होती है और प्रभात के आगमन की ललाम लालसा से उसका हृदय हलसित  
होता है। इसी प्रकार अज्ञात की स्पन्द महादेवी के हृदय को भी व्यग्र बना  
ढालती है। असहाय और निरुपाय होकर वे अपने मन से ही प्रश्न कर बैठती  
है , ‘कौन तुम मेरे हृदय में ? यह प्रश्न ही रहस्यवाद का जनक है और और  
प्रश्न की विश्रान्ति ही रहस्यवाद की रहस्यवादी भूमि का उपसंहार । महादेवी  
जी को यह ज्ञात है कि इस रहस्यवादी भूमिका का अन्त तभी होगा जब जीवन  
में प्रेम का अध्याय खुलेगा । यदि प्रेम नहीं है तो प्राप्ति भी नहीं । फिर  
तृप्ति का तो नाम ही कहा ? ’ वे कहती हैं- ‘अलि तृप्ति कहा जब प्रीति  
नहीं । ’ फिर तृप्ति का तो नाम ही कहा ? ’ इसलिए महादेवी जी

१- यामा - महादेवी पृ० ८१

२- ,, पृ० ११३

ने प्रिय से एक होने के लिए और अपने आपको अखण्ड सुहागिनी बनाने के लिए ही निस्सीम और अज्ञात प्रिय से माधुर्य सम्बन्ध स्थापित किया है।

महादेवी जी का प्रिय अलौकिक, अज्ञात, असीम और रहस्यमय है। वह वही है जिसका परिचय दार्शनिक विवेचन में 'नेति नेति' से प्रस्तुत किया जाता है किन्तु दर्शन और रहस्यवाद का यही अन्तर है कि रहस्यवाद में बुद्धि का ज्ञेय माधुर्य सम्बन्ध से हृदय का प्रेम पहचानना, असीम और ज्ञात रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः उसका कोई स्थूल स्वरूप नहीं किन्तु इतना होने पर भी वह भौतिक विशेषताओं से मुक्त सा प्रतीत होता है। वह अज्ञात लोक से मर्त्यलोक की धरा पर उतर आता है। प्रियतम की सीमा निस्सीमता में है। उसकी छाया ( परछाई ) को कवयित्री के नेत्र अच्छी तरह पहचानते हैं। उसके पैरों की आहट को हृदय बहुत भली भाँति पहचानता है। यथा-

‘ कहीं दृग पहचानते,

पदचाप यह उर जानता है ’

प्रिय के पद चाप बड़े ही नीरव हैं। महादेवी जी का प्रिय अलवेला सा है।

‘ मैं अलवेली नारि वलम कुछ मेरा अलवेला सा है ’, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह आलसी हो। सबके सो जाने पर भी वह जागता रहता है- ‘ सो रहा है विश्व पर प्रिय, तारकों में जागता है । ’ उसका हास परिहास महादेवी जी को बड़ा ही प्रिय है। उसका हास फूलों में व्याप्त है। उसको तम के परदों पर विचरण करना प्रिय लगता है -

‘ प्रिय को भाता तम के परदों पर जाना

नम की तारावलियों तुम पल भर को बुझ जाना । २

महादेवी जी का प्रिय वीणावादक कुशल गायक है। वह इतना कुशल गायक है मानो उसकी वीणा में जादू भरा हो। ' इस जादूगरनी वीणा पर गा ले दो चाण भर गायक । ' वह प्रेम का साकी है । उसका साहस मुख मण्डल देखने में ऐसा प्रतीत होता है मानो अरुणादय हो गया हो । इतना होने पर भी वह प्रियतम स्वभाव से निष्कुर है। उसे दूर रहना ही प्रिय है। वह अपनी स्मृति से प्रेयसी के हृदय को कचोटता है। इसलिए वह दूर रह कर ही खेल खेलना चाहता है किन्तु महादेवी जी को यह प्रिय नहीं । ' दूर रह कर खेलना पर मन न भरा मानता है ' और प्रेमी हृदय यह कह उठा -

‘ वे स्मृति बन कर मानस में  
सटका करते हैं निसदिन  
उनकी इस निष्कुरता को  
जिसमें मैं भूल न जाऊँ । ’

प्रिय के वियोग में महादेवी जी का जीवन ' विरह का जलजाल ' बन गया है । वेदना जीवन से गीले आँचल सी लिपटी हुई है। उनकी इस वेदना में हाहा-कार नहीं, संयम और धैर्य है। वियोग की अग्नि ' लंका दाहि पलंका ' को भी नहीं जलाती । नयन नीर से न घन हारते हैं और न जलना में बाढ़ आती है। पीड़ा महादेवी के लिए प्रिय है। आखिर जाते हुए प्रिय ने अपनी स्मृति के स्वरूप पीड़ा ही तो दी थी । फलतः प्रिय से कम मासक पीर नहीं । महादेवी जी को प्रिय से न शिकायत है और न शिक्वा । यह तो उन्हें वियोग में कुछ होश रहता हो । महादेवी को तो कुछ भी होश नहीं । इसलिए वह क्या संदेश लिखें और उसके पास तो कौर भी काले करने को नहीं फिर संदेश भी कौन ले जाय ? वह तो प्रेम में आकण्ठ निमग्न हैं । इसलिए कह उठती हैं -

‘ कैरे संदेश प्रिय पहुँचाती ।  
वृग जल की सित मसि है अजाय ,  
मसिप्याली , करते तारक-द्रव्य ।

पल पल के उड़ते पृष्ठों पर

सुधि से लिख खासों के वचार -

मैं अपने ही बेसुधन में

लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती ॥ १

महादेवी जी यों तो प्रिय को रिक्तान के लिए हर सम्भव प्रयास करती हैं । शकुन्तला की तरह उन्हें प्रकृति से हर सज्जा की सामग्री प्राप्त हो जाती है । प्रकृति, हर प्रकार से महादेवी जी की प्रेयसी और प्रिय के मिलन में सहायक सिद्ध होती है। प्रकृति में कितनी सहानुभूति है। कोकिल और चातक ने जो कुछ प्रिय के वियोग से दुःखी है, केवल महादेवी जी के इतना कहने पर कि बाज उसका प्रिय उससे मिलने जा रहा है, प्रसन्न होकर " फ़ि फ़ि " की रट लगाना बन्द कर दिया है-

" मैं आज तुला बाई चातक ,

मैं आज तुला बाई कोकिल । "

अज्ञात प्रिय से महादेवी का मिलन भी हुआ है, किन्तु मिलन मूक था । इस मूक मिलन को फुटलाने वालों को उनकी प्रेयसी चुनौती देती है। प्रकृति प्रमाण है उस मिलन का । विकसित पृष्ठों की सजल पंखड़ियाँ गवाही दे रही हैं-

" कैसे कहती हो सप्ता है

जलि उस मूक मिलन की बात

भरे हुए अब तक कलियों में

भरे बाँसू उनके हास । "

फलतः महादेवी जी अपने को धन्य मानने लगी । आत्मा परमात्मा मिलकर

एक हो गए । इसलिए प्रिय अब परिचय की भी क्या आवश्यकता -

“ प्रिय मुझ में तुम

फिर परिचय क्या ? ” १

भेद मिट गया । कबीर का “ कुंभ ” फूट गया । जल जल से मिल गया ।  
कामना पूर्ण हुई - “ कौन तुम मेरे हृदय में ? ” जैसी जिज्ञासा का किल्ल  
में तुमसे हूँ एक, एक हूँ जैसे रश्मि प्रकाश ” के रूप में हो गया । अब महादेवी  
जी ने अपने मानस के मन्दिर में ही प्रिय की प्रतिमा की स्थापना कर ली है।  
यह कबीर की प्रेयसी आत्मा की वही स्थिति है जब कबीर ( राम की कहूरिया )  
“ मैना देखूँ और को तोहिन देखन देहु । ” जैसी एक निष्कला की अवस्था  
को प्राप्त हो जाते हैं। इस स्थिति में यदि कहीं जानियों को स्वार्थ की चतुर्ता  
की गंध आती हो तो उन्हें यह न भूलना चाहिए कि प्रेम तो अपने मूल में बन्धा  
है। स्वार्थ की उससे अपरिहार्य सम्बन्ध है। अपने प्रिय को मानस में बसाकर महादेवी  
जी की प्रेयसी आत्मा मात्र औपचारिकता में विश्वास खो बैठती है। इसीलिए  
उसकी धारणा बन गई है कि “ क्या पूजा क्या नमन रे ” सच है, जब प्रेम दशा  
अपनी चरमावस्था तक पहुँच गई हो जब अद्वैत की स्थिति करीब हो तब पूजा  
कैसी ? फिर पूजा किसकी ? क्या कोई उस समय पूज्य, पूजक से भिन्न है ?  
यदि नहीं तो फिर पूजन का दिखावा क्यों ? पूज्य और पूजक दोनों एक ही  
हो गये हैं। देखिए इस एकता का रूप कैसा मनोहारी है ? “ बीन भी हूँ मैं  
तुम्हारी रागिनी हूँ ” इसीलिए तो प्रिय को पाकर अनहद नाद के समान प्रिय  
से अभिन्न होने की मिठास में डूबकर महादेवी की रहस्य परिकल्पना निर्भय हो  
कर पुकार उठी कि अब तो मैं “ अलण्ड सुहागिनी हूँ ” यह है रहस्य की अंतिम  
परिणति । पर्दा उठ गया है। इस स्थिति में प्रेम योग किसी भी ज्ञान योग  
और कर्म योग से कम महत्वपूर्ण नहीं ।

पंचम अध्याय : उपसंहार

मूल्यांकन

स्व

उपलब्धि

### उपसंहार

#### मूल्यांकन और उपलब्धि

महादेवी जी के विषय में इतना कहा जा चुका है कि उसमें कुछ नया जोड़ पाना आसान काम नहीं है, पर स्वीकृत प्रतिमाएं हमें निरन्तर नयी पहचान के लिए उत्तेजित सी करती रहती हैं, विशेषतया महादेवी जी आज भी सर्जनरत हैं और जहाँ तक हिन्दी के नए मुहाने का प्रश्न है वे आशा से विपरीत दिशा में संसरित हो सकते का साहस रखती हैं।

जब कोई रचना आन्दोलन अपनी सर्वोत्तम से गुजर रहा हो, या गुजर चुका हो और सर्जन के कुछ द्रष्ट प्रतीमान स्थापित हों तब किसी रचनाकार का अपनी अलग पहचान बनाने का प्रयत्न सरल नहीं होता, महादेवी छायावाद के सर्वोत्तम छाणों में अपनी सर्जन के माध्यम से अग्रसर हुई हैं, लेकिन वृहन्नयी की बात करते हुए समीक्षक महादेवी को उससे अलग हटाकर देखने के अभ्यस्त रहे हैं- कभी रहस्यवाद से जोड़कर, कभी गीत संसृष्टि से, परन्तु महादेवी के रचना संसार का यह अधूरा साक्षात्कार है, क्योंकि उनकी कृतियों में 'शृंगला की कड़िया' जहाँ हम महादेवी जी की विद्रोही सामाजिक चेतना को देख सकते हैं, उनके रेखाचित्र तथा संस्मरण हैं, जहाँ सामान्य पात्रों की ही नहीं, फल- पक्षी समाज को भी उन्होंने अपनी निश्कल सहानुभूति दी है- और यह सब महादेवी की मानवीय संवेदना और रचनात्मक संलग्नता के भीतर से होकर आया है। उनकी कठिनाता जब आक्रोशी होती है तो विद्रोह का रूप लेती है और अपनी दो टूक बातों के लिए वे आज भी हमारी आदरणीय हैं। प्रेमचन्द शताब्दी समारोह के अवसर पर उन्होंने

कहा था- “ अगर हम प्रेमचन्द के उत्तराधिकारी हैं तो वास्तव में उस जालोक को हम ग्रहण करें, मनुष्य की एकता के लिए, गरिमा के लिए हम वास्तव में संघर्ष करें और अपनी जीवन से जो मूल्यवान् ~~ह~~ सकते हैं, निश्चित रूप से दें, जो जाति देना नहीं जानती- जीवन के किसी बड़े मूल्य के लिए प्राण देना जिसके लिए कठिन हो जाता है- उसके पास जीवन के मूल्य नहीं रहते , जीवन के मूल्य वास्तव में समग्र जीवन ही चाहते हैं और जब हम उनको लाना चाहेंगे तब ऐसे व्यक्तियों का स्मरण हमें बल देगा , जो जीवन के मूल्य को मानते थे, आज हमारे जीवन के मूल्य बिखर रहे हैं, इसलिए प्रेमचन्द की शती मनाने में हम यह ध्यान रखें कि इस व्यक्ति से हमें पाना है। ” संयोगवश पिछले दिनों महादेवी जी ने अपनी प्रिय रचनाओं का संकलन ( कविता, निबन्ध, संस्मरण ) स्वयं किया है, और संचित भूमिकाओं के माध्यम से अपनी बात भी कही है ।

इन संकलनों से महादेवी के सम्पूर्ण सृजन का एक प्रामाण्डल बनता है । संचित भूमिकाओं का स्वर भी आज के सन्दर्भ में कुछ बदला- सा दिसाई देता है । उनकी मूल स्थापनाएं, विशेषतया मानव-मूल्य सम्बन्धी उनकी चिन्ता की आधारभूमि लगभग वही है, पर बदलते सामा-जिक सन्दर्भों में रूपान्तरण के कुछ संकेत मिल जाते हैं । मेरे प्रिय निबन्ध की भूमिका में अपनी “ बात में ” उनकी यह टिप्पणी कि जेक वर्ण पहले मैंने जो यथार्थ और आदर्श की विवेचना की थी वह आज भी सत्य है, पर इसी के अगले वाक्य में उनका यह कथन कि “ एक ही परिस्थिति सब में एक, सी प्रति क्रिया नहीं उत्पन्न करती, अतः व्यक्ति का भोगा हुआ यथार्थ सीमित तथा वैयक्तिक ही रहेगा , या सामयिक सन्दर्भ में उनकी टिप्पणी कि “ आज के लेखन में जो भोग हुए यथार्थ का प्रश्न उठाया जाता है, वह तर्क की कसौटी पर ठहरने में असमर्थ ही सिद्ध होगा, अथवा लेखक इसी से जीवन के उस यथार्थ को भी अंकित कर पाता है, जो अन्य का है । ”



महादेवी के सम्पूर्ण रचना वृत्त से न गुजरने के कारण, विशेषतया उन्हें कविता तक सीमित कर देने के कारण हमें उन्हें "स्करस रचनाकार" के रूप में देखते आए हैं, पर वास्तविकता यह नहीं है, पहले हम महादेवी की रचना के वैचारिक आधार को ले तो अपनी भाषा के कारण मानववादी अवधारणा का भ्रम भी उत्पन्न कर सकता है, पर इससे सही मायने में यह प्रतीति टूटती है कि महादेवी जी के पास केवल भावना व्यापार या संवेदना जगत् है, और उनकी रचनाशीलता की कोई वैचारिक पीठिका नहीं है।

बिना विचार-भूमि के रचनारं लम्बी, सार्थक यात्रा नहीं कर पाती है, या तो वे भावोच्छ्वास बन कर रह जाती हैं या फिर स्वयं को दुहराती रह जाती हैं- एक ही बिन्दु पर और वह भी इतिहास की गत्यात्मकता को बिना पहचाने हुए अपने निबन्धों की भूमिका में महादेवी जी ने स्वीकारा है कि "कविता ने जैसे मरी अनुभूति की गहराई दी है। गद्य ने उसी प्रकार मेरे बोध को व्यापक क्षितिज दिया है"। यह वैचारिकता और दृष्टि का स्पष्ट संकेत है। क्रायावाद की उनकी प्रसिद्ध परिभाषा और व्याख्या के अतिरिक्त कई ऐसे निबन्ध हैं जो हमारे सामाजिक बोध से सम्बन्ध रखते हैं और आज भी व्यापक चर्चा और बहस के मुद्दे हैं। महादेवी जी संस्कृति-सम्यक्ता पर विचार करते हुए एक व्यापक दृष्टि का परिचय देती हैं। आज के सन्दर्भ में रख कर देखती हैं। उनके सामने निश्चय ही आज का मूल्यगत और सांस्कृतिक संकट विद्यमान है, इसीलिए वे सामाजिकता की चर्चा करती हैं।

"सम्यक्ता और संस्कृति किसी एक में सीमित न होकर सामाजिक विशेषता है, जिसका मूल्यकिन समाजबद्ध व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार में ही सम्भव है।" महादेवी जी को अपनी समय की जटिलता और मनुष्य के समष्टि प्रस्तुत मानवीय संकट का पूरा सहसास है और उनकी इस गहरी मानवीय चिन्ता को हम उनके निबन्धों में देख सकते हैं। अपने निबन्धों की भूमिका में वे लिखती हैं

कि " भारी सहानुभूति से मुझे समाज के दलित पीड़ित व्यक्तियों के तादा-  
त्म्य की शक्ति देकर ही जीवन- दृष्टि दे दी है जिससे मेरे लेखन में आलोक  
मिलता है।

महादेवी जी ने अपने निबन्धों में कुछ प्रासंगिक  
और विवादास्पद , विचारोत्तेजक प्रश्नों पर विचार किया है- जैसे - साहि-  
त्यकार : व्यक्ति और समष्टि, समाज और व्यक्ति, भाषा का प्रश्न , जीने  
की कला आदि । महादेवी जी साहित्य की संश्लिष्ट प्रक्रिया पर विचार  
करती हैं और उसके इस दैत पर उनकी दृष्टि है कि एक और व्यक्ति का नि-  
र्जीव संसार है तो दूसरी ओर व्यापक सामाजिक कल्याण- भाव भी । इस  
दृष्टि से वे साहित्य को ' सामाजिक और श्रेष्ठ सामाजिक कर्म के रूप में देखती  
हैं । स्पष्ट है कि उनके समझा रचना और साहित्य का गहरा सामाजिक ,  
संस्कृति आशय मौजूद है । उनकी टिप्पणी आज के माहौल में प्रासंगिक प्रतीत  
होती है - " जिस युग में समाज की दबी हलचलें उसके अन्य क्षेत्रों में भी  
कुछ असंतोष उत्पन्न करने लगती हैं, उसमें साहित्य सहज नेतृत्व प्राप्त करने  
लगता है । परन्तु जिन युगों में समाज के अव्यक्त मन पर जड़ता का स्तर कठिन  
ही जाता है, उनमें साहित्य की या तो स्वयं भी जड़ता का स्तर बढ़ लेना  
पड़ता है, या अकेले झुकना । " ऐसा कहते हुए महादेवी जी के सामने यह  
दृश्य मौजूद है कि एक जटिल समाज में रचना को किन कठिनाइयों से गुजरना  
होता है और यह भी कि ऐसी दयनीय स्थिति में सर्व श्रेष्ठ रचनाएं कम ही  
आ पाती हैं- और वह भी भारी मूल्य चुका कर ।

मान लिया गया कि महादेवी जी का एक  
एकान्तिक, किसी सीमा तक कल्पित संसार है, जिसमें उनके संवेदन क्रियाशील  
रहते हैं, पर उनकी रचनाशीलता से गुजरने पर यह भ्रांति अपने आप टूट जाती  
है । वे धारा के साथ दौड़कर उसमें समा भले न जायें, पर इसका बोध उन्हें  
है कि समाज का भविष्य कितनी तेजी से बदल रहा है । समाज और व्यक्ति

की चर्चा करते हुए वे आर्थिक सम्बन्धों का प्रश्न उठाती हैं, “जहाँ सामाजिक व्यक्ति की अनिवार्यता है, क्योंकि उसके द्वारा जीवन के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त हो सकती है। इसी निबन्ध की समाप्त पंक्तियों में उनकी बीजस्वी टिप्पणी है : “केवल शक्ति से शासन हो सकता है, समाज नहीं बन सकता, जिसकी स्थिति मनुष्य के स्वच्छन्द सहयोग पर स्थिर है। निरंकुश शासन शासक का अन्त कर सकता है, निरंकुश समाज मनुष्य को समाप्त कर देता है। यह है महादेवी जी की निर्भीक टिप्पणी जो मूल्यगत चिन्ता से उफ़ी है और जिसकी सही समझ के लिए हमें उनके गद्य से गुजरना ही होगा। दरअसल कविता तक उन्हें केन्द्रित कर देने से उनका समग्र व्यक्तित्व हमारी फाड़ में जा ही नहीं सकता और हम उनके उस तेजस्वी रूप से अपरिचित रह जाते हैं जिसके कुछ हिन्दु इतिहास की लम्बी यात्रा में भी प्रासंगिक बने रहेंगे क्योंकि वे सामाजिक सदमों से, मानवीय चिन्ता से उफ़ी हैं, यही हम महादेवी का चिन्तक-विचारक रूप पाते हैं, जो अमूर्त अथवा वाक्यी न होकर, जीवन संस्पर्श से उफ़ा है। हाँ उसकी पहिचान का काम इसलिए कठिन हो जाता है कि उसकी भाषा किसी गहन आशय को व्यंजित करने के प्रयत्न में कई बार प्रतीकों तक का सहारा लेती है, पर उनकी टिप्पणियाँ विचारणीय हैं- “आज के समाज की जो स्थिति है, उसकी उपयुक्त परिभाषा कठिनता से की जा सकेगी वह कुछ विशेष अधिकार सम्पन्न और कुछ नितान्त अधिकार शून्य व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो उपयोगिता से नहीं बल्कि परम्परागत धारणा से बंधा है, कहीं संतोष की अति वृष्टि है और कहीं असंतोष की अनावृष्टि जिससे सामाजिक जीवन का सामंजस्य नष्ट होता जा रहा है। महादेवी जी के निबन्ध उनकी वैचारिक भूमि की समझ के लिए तो उपयोगी है ही, वे यह भी बताते हैं कि वे अपने समय से बेखबर नहीं हैं और उनकी चिन्तारं ईमानदार हैं, मानवीय हैं।

महादेवी के संस्मरण, निबन्धों और कविताओं के बीच संस्थित है, उनमें दोनों की मिली जुली भूमि है। मानवीय संवेदनशीलता और निरीक्षाण क्षमता के सहारे वे व्यक्ति-चित्र बनाते हुए पशु-पक्षियों तक से एक निकटता स्थापित करती हैं, जो आज के ज़माने में काफी कठिन काम है, क्योंकि शहरी दबावों में हम प्रकृति से अलग अलग पड़ गए हैं। अक्सर संस्मरण लिखते हुए या शब्द चित्र बनाते हुए हम स्वयं को अतिरिक्त आरोपित कर देते हैं और मूल विषय अथवा चरित्र के परिपार्श्व में चले जाने के स्तरे में होते हैं। यह अतिरिक्त आच्छेदन हमारी अहं वृत्ति के कारण होता है, जहाँ "मे" की मुख्यता ही जाती है। महादेवी रेखाचित्र को इस रूप में देखती हैं-  
 "लेखक कुछ गिनी चुनी रेखाओं के स्थान में शब्दों को रखकर तटस्थ भाव से किसी का व्यक्तित्व स्पष्ट कर सकता है" ।

महादेवी जी में रेखाचित्र और संस्मरण की एक समन्वित स्थिति दिखाई देती है और यहाँ उनका चित्रकार भी सक्रिय है, विशेषतया पात्रों-चरित्रों के शब्द चित्र बनाते हुए, रामा की साँप के पेट जैसी सफेद हथेली और पड़ की टेढ़ी भड़ी गाँठदार टहनियों जैसी उँगलियाँ वाले हाथ (रामा), झोटे कद और दुबले शरीर वाली भक्तिन के फले ओठों के कोनों में दृढ़ संकल्प और आँखों में एक विचित्र समझदारी (भक्तिन), कुछ तिरछी, अधखुली और विरल भूरी बरानियाँ वाली आँखों की तरल रेखा-कृति (चीनी फेरीवाला), पात्रों के कुछ संचिपित रेखाचित्र हैं जिनमें कुछ सांकेतिक रेखाएँ दी गई हैं, पर उनकी जीवन रेखाएँ उस चित्र में रंग भरती हैं, तब दृश्य पूरक होता है, यहाँ हर पात्र की जैसे अपनी कथा है जिसे सुनाते हुए देवी जी कथाकार हो जाती हैं - नर टेर। उनका यह गुण तब और भी मुखर होता है जब वे पशु-पक्षियों के रेखाचित्र बनाते हुए अपनी संवेदनशीलता का परिचय देती हैं, कुल मिलाकर सबका एक व्यक्तित्व उभरता है और यही इन संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की सफलता है।

महादेवी जी की कविता की विवेचना समीक्षकों ने अपनी अपने ढंग से की है, किसी ने उन्हें छायावाद की मूल धारा में ही देखा और किसी ने उन्हें रहस्यवाद से जोड़ दिया या फिर छायावादोत्तर गीत-सृष्टि से। महादेवी जी का अपना एक संवेदन जगत् है जो कविता में बार बार उपस्थित है, अनेक रूपों में, और इस दृष्टि से उनसे एक रसता की शिकायत तक की जाती है। अपनी सीमाओं में विस्तार करना और इतिहास के प्रवाह से संयोजित होना रचना को नर जायाम देता है पर जो रचनाकार अपनी सीमाओं को जान समझकर ईमानदारी के साथ उसी में रचनारत रहता है, उसकी उपलब्धियों को नकारना भी उचित नहीं है, ऐसे सृष्टा अपनी संभावनाओं का सर्वोत्तम उपयोग कर लेते हैं। एक विशेष संवेदन जगत् तथा एक निश्चित अभिव्यक्ति माध्यम की अधिकांश जामतारें दुह लेते हैं। जागे जाने वाले किसी रचनाकार के लिए उस भूमि पर काम कर पाना कठिन हो जाता है। कविता में महादेवी जी अपनी सीमाओं से परिचित हैं और उसी संसार में रचनारत रहती हैं जिसे हम भिन्न नामों से अभिहित कर सकते हैं। एक ऐसा प्रणय निवेदन जो किसी अगोचर अदृश्य का संकेत भी करता है, एक स्वनिर्मित परिवेश जिसमें करुणा-विषाद के ज्ञाण है, पर रचना का अपना आत्म-विश्वास भी है। संवेदन की यह दुनिया जीवन धारा से अलग अलग दिखाई देती है। महादेवी जी के गद्य संसार का लगभग विलोम, पर हम इसे मात्र एकान्तिक नहीं कह सकते क्योंकि इसमें लोक कल्याण के लिए साधना की और भी इंगित किया गया है। यथा-

“ अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कैंप हो ले  
या प्रलय के अक्षुण्णों में मौन अलसित व्योम रो ले  
आज पी आलोक को डोलें तिमिर की घोर छाया  
जागकर विधुत शिखाओं में निहुर तूफान बोलें  
पर तुफ हैं नाश-पथ पर चिन्ह अपने छोड़ जाना ॥

महादेवी जी की मुख्य बनावट या कहें कि कविता में एकमात्र बनावट आत्मिक है और वे हमानी निजी अनुभूतियों का अधिकाधिक उपयोग करती दिखाई देती हैं- साधना के आध्यात्मिक संकेत करते हुए, इन कविताओं में एक साधक संसार बिना किसी शास्त्रीय पद्धति का सहारा लिए, संवेदन के स्तर पर उठता दिखाई देता है जिसमें करुणा की भूमिका काफी मुखर है, जिसे कुछ लोग बौद्ध दर्शन की करुणा से जोड़ कर भी देखना चाहते हैं, पर विचारणीय यह है कि इस रागाकुलता के मूल में कोई विचारणा भी क्रियाशील है, अन्यथा ये गीत भावोच्छ्वास बन कर रह जाते, इस दिशा में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य है महादेवी जी का साधना सम्बन्धी आत्म विश्वास जिसमें वे यहाँ तक कहती हैं कि "जान लो यह मिलन स्काकी । विरह में है दुकेला । अथवा 'मिलन का मत नाम लो मैं विरह में चिर हूँ' । महादेवी जी का यह संसार नितान्त स्कान्तिक भी प्रतीत हो सकता है और यह तो आसानी से कहा जा सकता है कि इसमें यथार्थ की सम्पृक्ति कहाँ है ? पर महादेवी जी ने जिस संवेदन-जगत् को अपना काव्य विषय बनाया है, उसके भीतर से उसकी समस्याओं को देखना अधिक प्रासंगिक होगा, अपेक्षाओं की कोई सीमा नहीं होती और वे अलग अलग हो सकती हैं ।

महादेवी जी की कविताओं में जो संवेदन संसार प्रक्षोभित है, वह कई बार हमें असमंजस में भी डाल देता है और संभव है किसी समय इसकी व्याख्याएं विभिन्न दृष्टियों से की जायें । भारतीय समाज में एक स्थिति यह भी है कि रचना से किसी न किसी रूप में आध्यात्मिकता की मांग की जाती रही है और नतीजा यह हुआ है कि कवि के बर्ना चाह भी उसे कविता में बदलने का प्रयत्न किया गया । महादेवी के कई गीत ऐसे हैं जो प्रणय निवेदन के रूप में सरलता से ग्रहण किये जा सकते हैं और उनमें अलौकिक संकेतों की खोज हमारी कोई बाध्यता नहीं है, जैसे-

"मैं नीर भरी दुःख की बदली ,

जो तुम आ जाति एक बार \*\*  
 \*\* मेघ सी धिर \*\*

आदि पर साधना का जो जगत् इन कविताओं में उभरता है, उसे मेटाफिजिकल अथवा आध्यात्मिक काव्य के समीप भी कह सकते हैं, क्योंकि रहस्यवादी काव्य की शास्त्रीयता यहाँ नहीं है, अलौकिकता के कुछ सकेत भर हैं। महादेवी अपने गीतों में प्रकृति का उपयोग करती हैं, कभी दृश्य के रूप में और कभी परिवेश को व्यंजित करने के लिए, 'वसन्त रजनी' एक ऐसा ही दृश्यबन्ध है जिसमें कवयित्री का निवेदन भी सम्मिलित है -

\*\* तारकमय नव वैष्णी-वन्धन  
 शीश-फूल कर शशि का नूतन  
 रश्मि-बलय सित धन-अवगुण्ठन  
 मुक्ताहल अविराम बिछादे  
 चितवन से अपनी । \*\*

सब बात यह है कि महादेवी जी के वे गीत सर्वात्म्य हैं जहाँ किसी भाव-विन्दु अथवा दृश्य की एकाग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है और ऐसे गीतों की संख्या काफी है। इनमें एक सम्पूर्ण कलात्मकता तथा संगीतमयता तो है ही, उसकी संग्रहित अभिव्यक्ति भी सराहनीय है। कुछ गीत में निराला के समीप दिखाई देते हैं, जैसे- ओ विभावरी आदि। वे गीत साधारण हैं जहाँ अनुभूति चाण बिखर जाती है, एकाधिक दृश्य लाने का प्रयत्न है, अलंकरण मोह है, सन्वय ही कमजोर है अथवा अभिव्यक्ति शिथिल। पर जहाँ महादेवी भाव की पूर्णता, अथवा दृश्य की समग्रता पर ध्यान देती हैं, और किसी प्रकार का दुःख संकोच भी नहीं करती, वह अभिव्यक्ति स्वयं सम्पूर्ण है। जैसे - रश्मि, सुधि, कौन तुम मेरे हृदय में, वसन्त रजनी, मधुर मधुर मेरे दीपक जल, सब आँखों के आसू, यह मन्दिर का दीप, जैसे गीत। कुल

मिला कर एक और उनका अन्तिमस्वी स्कान्तिक काव्य- जगत् है जिसमें संवेदन और अनुभूति के साथ विचार बिन्दु भी मौजूद है तो दूसरी ओर उनके निबन्धों, स्मरणों, रेखाचित्रों का संसार है जहाँ कवयित्री जीवन यथार्थ के निकट है और उसकी कुछ मूलभूत मूल्यगत चिन्तारं हैं। कहने को तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि उनकी कविता और उनके गद्य में काफी दूरी है, सास तौर पर संवेदन जगत् की। पर इसका एक कारण यह भी है कि कविताओं में महादेवी जी मुख्यतया निजता से परिचालित हैं और दीप्ति आदि के प्रतीकों का उपयोग करते हुए किसी साधना का संकेत करती हैं। पर गद्य में वे वस्तु पात्र के सामने सामने हैं और यथार्थ को स्वीकारती चलती हैं, यद्यपि यहाँ भी उनकी चिन्तन-शीलता केवल तर्काश्रित न होकर, संवेदनाशील है और इसीलिए उन कट्टरपंथियों को निराश होना पड़ सकता है जो रचनात्मक साहित्य को दर्शन अथवा विचारणा की प्रतिकृति के रूप में पाने की अभिलाषा रखते हैं। महादेवी जी में एक वृहत्तर मानवीय संवेदना है, मूल्यगत चिन्तारं हैं, पर उन्होंने दर्शन बघारने, उपदेशक बनने या फतवा देने की भूल नहीं की और इसीलिए वे सर्जन की लम्बी यात्रा कर सकी - सार्थक, ईमानदार, निर्मल यात्रा, जिसकी सीमाएँ हो सकती हैं, पर जिसकी सार्थकता जग जाहिर है और किसी भी दौर में यह निःसंकोच कहा जायेगा कि यह है एक फरेखा जिस पर एक प्रतिभा निर्भीक भाव से, पूरे आत्म विश्वास के साथ चलती रही।



### सहायक ग्रन्थों की सूची

अनुसन्धान और आलोचना	डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६१
आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्ण लाल, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १९८२
आधुनिक हिन्दी कवितका की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डा० नगेन्द्र, ने० प० हा० दिल्ली, १९६४
आधुनिक हिन्दी काव्य	डा० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, ग्रंथम, कानपुर, १९६६
आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० कुमार विमल, अर्चना प्रकाशन, बारा (बिहार), १९६४
आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १९५४
आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यां- कन	डा० इन्द्र नाथ मदान, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९६२
आधुनिक काव्यधारा	डा० कैसरी नारायण शुक्ल, नंद किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, १९६१
आधुनिक काव्य रचना और विचार	आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, साधी प्रकाशन, सागर, १९६२
आधुनिक हिन्दी कवितका की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डा० नगेन्द्र, ने० प० हा० दिल्ली, १९६४
कला साहित्य और समीक्षा	डा० मंगीरथ मिश्र, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६३
काव्यशास्त्र	डा० मंगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९५७

गीति काव्य

डा० रामसेतावन पाण्डेय, ज्ञान मण्डल,  
वाराणसी, २००४

कायावाद के चार स्तम्भ

डा० रामेश्वर प्रसाद सिंह, पारिजात  
प्रकाशन, प्रयाग, २००८

कायावाद

डा० नामवर सिंह, सरस्वती प्रेस, बनारस,  
१९५४

नीहार

महादेवी वर्मा, साहित्य भवन लि० प्रयाग  
चतुर्थ संस्करण

विचार और विवेक

डा० नगेन्द्र, ने० प० हा० दिल्ली, १९६४

विचार और अनुभूति

डा० नगेन्द्र, ,, , १९६४

विचार और विश्लेषण

डा० नगेन्द्र, ,, , १९६४

महादेवी वर्मा

गंगा प्रसाद पाण्डेय, राजपाल एण्ड सन्स,  
दिल्ली, १९६८

महादेवी अमिनन्दन ग्रंथ

सं० देवदत्त शास्त्री, भारती परिषद्,  
प्रयाग, २०२१

महादेवी वर्मा : काव्य कला और  
जीवन दर्शन

सं० शचीरानी गुर्दा, राजपाल एण्ड सन्स,  
दिल्ली, १९६३

यामा

महादेवी, भारती मण्डार, इलाहाबाद,  
तृतीय संस्करण २००८

हिन्दी साहित्य का इतिहास

डा० नगेन्द्र, ने० प० हा० दिल्ली, १९७३

हिन्दी साहित्य का इतिहास

डा० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी  
समा, काशी चतुर्थ संस्करण

हिन्दी कविता में युगान्तर

डा० सुधीन्द्र, वात्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली  
१९५७

हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी

डा० नन्द दुतारे वाजपेयी,

हिन्दी की कायावादी कविता

डा० बलवीर सिंह रत्न, ने० प० हा० दिल्ली

का कला विधान

१९६४